* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

वर-वेशमें भगवान् शिव

मकरवाहिनी श्रीगंगाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
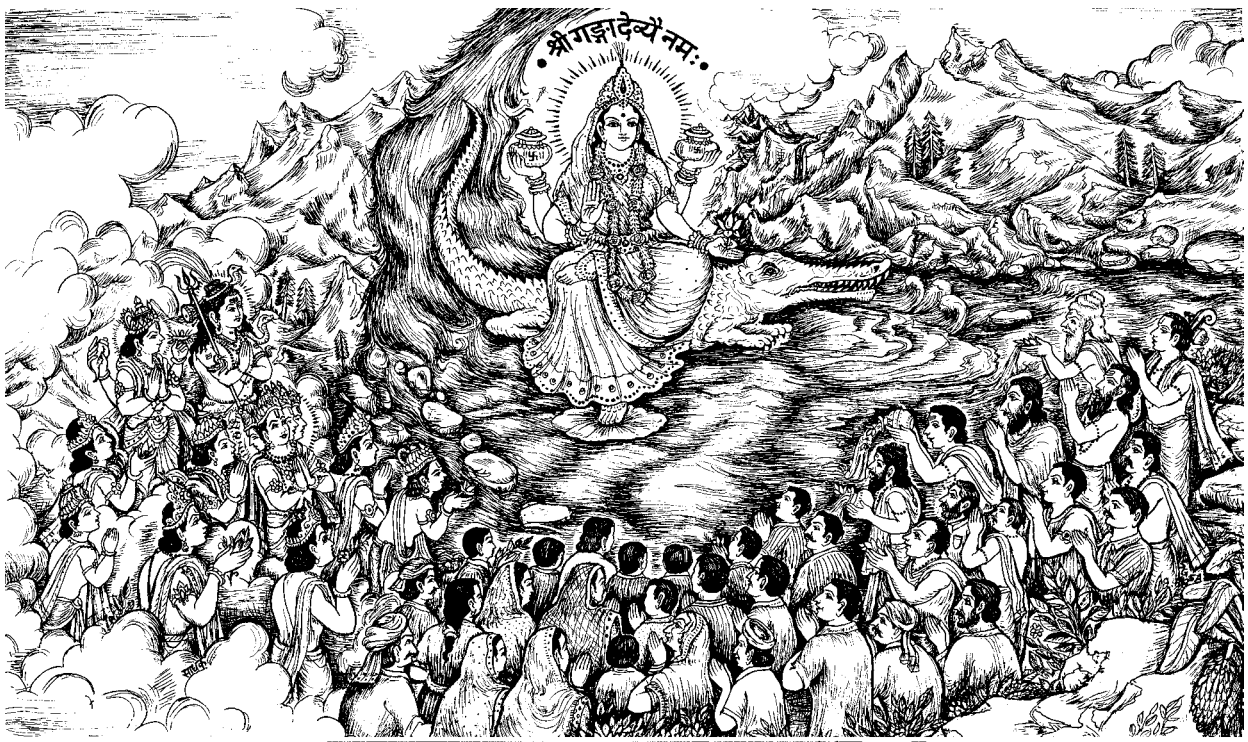
कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मार्च २०१६ ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या १०७२

भागीरथी-स्तुति

साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं
दुःखस्वाब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम्।
सर्वांहोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती
तस्यै भागीरथि श्रीमति मुदितमना देवि कुर्वे नमस्ते॥

जो जल साक्षात् धर्मकी राशि है, भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई सुधाका सार है, दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाज है तथा स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी है, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापोंका संहार करनेवाला, उत्तम गुणसमूहसे युक्त और शोभासम्पन्न है, श्रीमती भागीरथी देवि! ऐसे जलको आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्नचित्त होकर आपको नमस्कार करता हूँ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मार्च २०१६ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

कहते हैं कि बवण्डर-(चक्रवात)-के ठीक बीचमें एक ऐसा स्थान भी रहता है, जहाँ कोई हलचल नहीं। वहाँ वायुका तनिक भी प्रकोप नहीं रहता, प्रत्युत इतनी शान्ति रहती है कि यदि किसी छोटे शिशुको वहाँ सुलाया जा सके तो वह सुखकी नींद सोता रहेगा। वायुका झकझोर उसे छूतक नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार इस संसारके कोलाहलके मध्यमें प्रभु विराजित हैं तथा जहाँ वे हैं, वहाँ न तो जगत्‌की हलचल है और न त्रितापकी विषमयी ज्वाला ही, वहाँ सर्वदा और सर्वथा सुख-शान्ति भरी रहती है। जो कोई भी वहाँ पहुँच जाता है, उसके प्राण शीतल हो जाते हैं। जगत्‌के उलट-फेर उसपर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते।

हम अपने जीवनपर विचार कर देखें तो पता चलेगा कि उसमें न जाने कितने चढ़ाव-उतार हुए हैं, कितनी बार हम हँसे हैं और कितनी बार रोये हैं। संसारके प्रवाहमें बहते हुए हम सदा चंचल बने रहते हैं। अबतक कोई भी ऐसा विश्रामस्थल हमें नहीं मिला, जहाँ हम थोड़ी देरके लिये भी आरामसे टिक कर, शान्तिसे स्थिर होकर, थकान मिटा सकें। थककर हम जिसका सहारा लेने चलते हैं, देखते हैं वह भी हमारी ही भाँति हलचलमें है, सतत् उसी प्रवाहमें बह रहा है। इस प्रकार संसारके थपेड़ोंकी चोट खाते-खाते हम सबकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं, मन उद्विग्न हो उठा है और बुद्धि कुण्ठित हो चली है। इन्द्रियाँ यहाँकी वस्तुओंमें सुख ढूँढ़ने जाती हैं, पर सुखके बदले आगे या पीछे इन्हें प्राप्त होती है सदा विषैली ज्वाला ही। ये बुरी तरह झुलस जाती हैं। मन अनुकूलता ढूँढ़ने जाता है, अमुक परिस्थिति ऐसी बन जाय, अमुक व्यक्ति ऐसा बन जाय, यों सोचता हुआ यहाँकी वस्तुओंमें अपने योग्य आश्रय ढूँढ़ने चलता है, पर इसे भी पहले या पीछे मिलती है भयानक प्रतिकूलता ही। आजतक किसीके लिये भी सभी बातें सदा और सर्वथा अनुकूल बन गयी हों, यह न कभी हुआ है न होगा। इसीलिये अनुकूलता ढूँढ़नेवाले मनको प्रतिकूलता प्राप्त होती है और उस समय वह हाहाकार कर उठता है। बुद्धि सारा विवेक लगाकर निर्णय देती है कि बस, इस काममें लगो, इस बार सफलता अवश्य मिलेगी। इस बार तुम्हारे सारे अभावोंकी पूर्ति ही जायगी, किंतु परिणाम यह होता है कि हम असफल हो जाते हैं अथवा कहीं सफल भी हुए, हमारा कोई-सा एक अभाव पूर्ण भी हो गया तो उसके साथ ही नये दसों-बीसों अभाव खड़े हो जाते हैं। अब इन नये अभावोंकी पूर्ति कैसे हो, इस विषयमें बुद्धि कोई भी निर्णय नहीं कर पाती। इस प्रकार हमारा जीवन इस संसारके बवण्डरमें यहाँसे वहाँ उड़ता हुआ भ्रमण कर रहा है, सदा अशान्त बना हुआ है। किंतु यदि हम बवण्डरसे खिसककर, इसीके केन्द्रमें विराजित प्रभुसे जा लगें, उनकी छत्रछायामें विश्राम करनेकी ठान लें और साधनात्मक प्रयत्नमें लग जायँ तो निश्चय ही उनका सान्निध्य पा जायँ और हमारी दशा सर्वथा सुधर जाय। उस समय यहाँकी हलचल चाहे कितनी ही भयानक, कितनी ही प्रबल क्यों न हो, हम उससे कभी विचलित नहीं हो सकते। हम प्रभुकी गोदमें चक्रवातके मध्य केन्द्रमें स्थित शिशुकी भाँति सुखसे, चैनसे जीवन बिता सकते हैं। संसारकी हलचल हमें अभीतक प्रभावित करती है, जबतक हम संसारके मूलमध्यमें स्थित प्रभुकी शरण नहीं ग्रहण कर लेते।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् शिवका वर-वेष

शिव-पार्वतीके विवाहकी कथा सृष्टिकी सबसे मंगलमयी कथा है, जिसमें दम्पतीरूपमें सृजन, अन्नपूर्णारूपमें पालन और कुमारद्वारा तारकासुरके संहारका सन्निवेश है। यह समस्त सृष्टि शिव-शिवारूप ही है। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ, अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

शिव-शिवा अनादि हैं, नित्य हैं, शाश्वत हैं; वे नित्य दम्पती हैं, परंतु लीला-विलासके रूपमें मर्त्य प्राणियोंको दाम्पत्य-प्रेमकी शिक्षा देनेके लिये और देवताओंको तारकासुरके आतंकसे त्राण दिलानेके लिये उनकी यह विवाह-लीला होती है। इसमें देवाधिदेव महादेव वर बनते हैं और भगवती गिरिराजनन्दिनी जगज्जननी जगदम्बा वधू। शैलराज हिमालय और उनकी धर्मपत्नी मेनाको कन्यादानका और ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं, सप्तर्षियों, ऋषि-मुनियों, नन्दी आदि शिवगणों, यक्ष-गन्धर्वों, भूत-प्रेतों, डाकिनी-शाकिनियों, मातृकाओं, देवांगनाओं आदिको बाराती बननेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

उस समय ब्रह्माजीने विधिपूर्वक मण्डप-स्थापन, नान्दीश्राद्ध आदिके साथ मांगलिक कृत्य शिवजीसे सम्पन्न करवाये। शिवगणोंने नाना प्रकारसे भगवान् शिवका श्रृंगार किया।

तदनन्तर ब्राह्मणोंको आगे करके महादेवने प्रसन्नतापूर्वक कैलाससे प्रस्थान किया। भगवान् शम्भुने नन्दी आदि गणोंको अपने साथ हिमाचलपुरी चलनेकी आज्ञा देते हुए कहा—'तुम लोग थोड़े-से गणोंको यहाँ रखकर शेष सभी मेरे साथ हिमवान्के नगर चलो।' भगवान् भूतभावनका आदेश मिलते ही नन्दी तथा वीरभद्र आदि गणराज असंख्य कोटि गणों तथा भूतोंको साथ लेकर चले। उसी समय चण्डीदेवी भी रुद्रदेवकी बहन बनकर खूब उत्सव मनाती हुई वहाँ आ पहुँचीं। उनका वाहन प्रेत था। वे अपने सिरपर जलसे भरा हुआ सोनेका कलश लिये चल रही थीं। भेरियोंकी गड़गड़ाहट और शंखोंके गम्भीर नादसे तीनों लोक गूँज उठे। देवता लोग शिवगणोंके पीछे-पीछे उत्साहपूर्वक चल रहे थे। सम्पूर्ण सिद्धियाँ और लोकपाल आदि भी देवताओंके साथ थे। देवमण्डलीके मध्यभागमें गरुडासीन भगवान् विष्णु चल रहे थे। उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे तथा उनके ऊपर सुन्दर छत्र तना था। अपने पार्षदोंसे घिरे हुए वे अद्भुत शोभा पा रहे थे। ब्रह्माजी मूर्तिमान् वेद-शास्त्र, सनकादिक ऋषियों एवं प्रजापतियोंके साथ भगवान् शिवकी सेवामें तत्पर थे। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर अपनी सेनाके साथ चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय बारातके साथ यात्रा करते हुए बहुत-से ऋषि भी अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। सबके मनमें शिवजीका विवाह देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा थी।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे आनन्द मनाती हुई यह विचित्र बारात हिमवान्के नगरके समीप पहुँची।

वृषभारूढ़ भगवान् शिवका दर्शनकर हिमवान् धन्य हो गये। करोड़ों कामदेवोंकी छबिको मलिन करनेवाले महेश्वरकी शोभा अद्भुत थी। उनके दिव्य अंगोंके प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। उनका श्रीअंग नूतन रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका दिव्य मुकुट नाना रत्नोंसे जड़ा हुआ था, जिससे आँखोंको चौंधिया देनेवाला प्रकाश निकल रहा था। आभूषण बने हुए सर्प उनकी अंगकान्तिको द्विगुणित कर रहे थे।

गिरिराजने सबको सादर प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञासे बारातकी अगवानी करते हुए वे अपने नगरकी ओर चले। हिमवान्के पीछे महादेवजी अपने बारातियोंके साथ शीघ्रतापूर्वक चलने लगे।

सर्वप्रथम भगवान् विष्णु हिमवान्के द्वारपर पधारे। वे सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न थे। उनका सौन्दर्य करोड़ों

कामदेवोंको लज्जित कर रहा था। उन्हें देखकर मैनाके नेत्र चकोर बन गये। उन्होंने प्रमुदित होकर नारदजीसे पूछा—'नारद! क्या ये ही मेरी शिवाके पति हैं?' नारदजी बोले—'देवि! ये शिवाके पति नहीं, ये तो भगवान् श्रीहरि हैं। ये भगवान् शिवके सम्पूर्ण कर्मोंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं। शिवाके पति तो इनसे भी बढ़कर हैं। उनकी शोभाका वर्णन ही नहीं हो सकता।'

इसी प्रकार एक-एक करके सभी देवता आते, मैना उनका परिचय पूछतीं और नारदजी उनको महेश्वर शिवका सेवक बतलाते। इससे मैनाके मनमें हर्षके साथ-साथ अहंकार भी उत्पन्न हो गया। वे अपने तथा पार्वतीके सौभाग्यकी सराहना करने लगीं।

उस समय मैनाका अहंकार चूर्ण करनेके उद्देश्यसे अद्भुत वेषमें परमेश्वर शिव पधारे। वे स्वयं तो अद्भुत थे ही, उनके अनुचर और भी अद्भुत थे। कुछके मुख ही नहीं थे तो कुछ बहुत मुखवाले थे। सभी विचित्र वेश-भूषा धारण किये थे। उनके बीचमें भगवान् शंकर वृषभपर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखपर तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर जटा-जूट, गलेमें सर्पोंकी माला, दस हाथ, हाथमें पिनाक और त्रिशूल, आँखें भयानक—विचित्र वेष था शिवजीका! अपने दामादका यह रूप देखकर मैनाके हाथसे आरतीकी थाली छूट गयी। भयसे व्याकुल होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उन्होंने पार्वतीसे कहा—'मैं तुम्हें लेकर पहाड़से गिर पड़ूँगी, आगमें जल जाऊँगी या समुद्रमें कूद पड़ूँगी, पर जीते-जी मैं इस बावले वरसे तुम्हारा विवाह न करूँगी।' मैनाका अहंकार-मर्दनकर भगवान् शिवने उनपर कृपा की। उन्होंने करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाला दिव्य स्वरूप धारण किया। उनकी अंगकान्ति मनोहर चम्पाके समान थी। उनके एक मुख और तीन नेत्र थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। वे रत्न और सुवर्ण आदिसे विभूषित थे। गलेमें मालतीकी माला पहने हुए थे। सुन्दर रत्नमय मुकुट धारण करनेसे उनका मुखमण्डल उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहा था। कण्ठमें हार आदि सुन्दर आभरण शोभा दे रहे थे। सुन्दर कड़े और बाजूबन्द उनकी भुजाओंको विभूषित कर रहे थे। अग्निके समान निर्मल एवं अनुपम अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, विचित्र एवं बहुमूल्य युगल वस्त्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगर, कस्तूरी तथा मनोहर कुंकुमके अंगरागसे उनके अंग विभूषित थे। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था और उनके दोनों नेत्र कज्जलसे सुशोभित थे। उन्होंने अपनी प्रभासे सबको आच्छादित कर लिया था तथा वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। वे अत्यन्त तरुण, परम सुन्दर और आभरण-भूषित अंगोंसे सुशोभित होनेसे कामिनियोंको अत्यन्त कमनीय प्रतीत होते थे। उनमें व्यग्रताका अभाव था। उनका मुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओंसे भी अधिक आह्लाददायक था। उनके श्रीअंगोंकी छवि कोटि कामदेवोंसे भी अधिक मनोहारिणी थी। वे अपने सभी अंगोंसे परम सुन्दर थे। ऐसे सुन्दर रूपवाले उत्कृष्ट देवता भगवान् शिवको जामाताके रूपमें अपने सामने खड़ा देख मेनाकी सारा शोक और सारी चिन्ता दूर हो गयी। वे परमानन्दसिन्धुमें निमग्न हो गयीं और अपने भाग्यकी, गिरिजाकी, गिरिराज हिमवान्‌की और उनके समस्त कुलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपने आपको कृतार्थ माना और वे बारम्बार हर्षका अनुभव करने लगीं। सती मेनाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे अपने दामादकी शोभाका सानन्द अवलोकन करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं।

भगवान् भवानीपतिका यह दिव्य वर-वेष भक्तोंके लिय सदैव ध्येय है, यह उनका परम मांगलिक रूप समस्त मंगलोंका प्रदाता है। जो पुरुष भगवान् सदाशिवके इस सुन्दर रूपका नित्य पवित्र हो ध्यान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है।

नियमोंके पालनसे कल्याण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

लोकमें शिक्षाका महान् महत्त्व है; उसके धारण और आचरणका भी महान् महत्त्व है। अत: किसी भी प्रकारकी शिक्षाकी बात कही जाय, यदि उसके सुननेके साथ ही उसे धारण कर लिया जाय तो बहुत ही शीघ्र काम हो जाय, परंतु यदि सुन करके काममें न लाया जाय तो चाहे रोज सुना करे, फिर उसका विशेष असर नहीं होता। वही स्थिति अपने लोगोंकी हो रही है। थोड़ी देर या ज्यादा देर शिक्षाकी बात सुनी जाती है, पर उसे काममें बहुत कम लाया जाता है। एक तो इस दृष्टिसे अपने काममें लाये कि यह बात शास्त्र कहते हैं, इसे महात्मा लोग कहते हैं। तो अपने लोगोंको यही करना चाहिये, तिलभर भी उसके आगे-पीछे नहीं जाना चाहिये। चाहे जो कुछ भी हो, मामूली बातके लिये भी चाहे प्राण जाय, अपनेको वही बात करनी चाहिये जो सुनी और महात्माओंने बतलायी। यदि इतनी दृढ़ धारणा कर लें तो बहुत जल्दी काम हो जाय और यदि आपने आलस्यके कारण, शरीरके आरामके कारण या किसी भी कारणसे अवहेलना कर दी तो वही काम एक तरहसे मुश्किल हो जाय।

कल हमने महाभारतकी कथा पढ़ी, पढ़ करके मनमें यह आश्चर्य हुआ कि देखो जरत्कारु जो ऋषि हैं, उनकी स्त्रीने सायंकालमें उन्हें उठा दिया, इसलिये कि उनके सन्ध्याका समय हो गया। वह दोपहरसे तीसरे पहरतक सो गये थे। अब वह स्त्री जो है, उसने उन्हें उठा दिया तो वे अपनी स्त्रीपर क्रोध करके बोले—तुमने मुझे क्यों उठाया? उसने कहा—स्वामिन्! सूर्यभगवान् अस्ताचलको जा रहे हैं यानी सूर्य अब छिपनेवाले हैं, आपका यह नियम है कि सूर्यके रहते ही सन्ध्या कर लेना। मैं यदि इस समय आपको न उठाती तो आपके धर्ममें बाधा आती, इसलिये मैंने आपको उठा दिया। मैंने सोचा कि सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं तो उठा दूँ। तो उन्होंने कहा—मैं सोता रहूँ और सूर्य अस्ताचल चले जायँ, यह उनमें सामर्थ्य नहीं है। यह हो ही नहीं सकता। मुझे एकदम निश्चय है। मेरे हृदयमें यह निश्चय है कि मैं जबतक उठकर सन्ध्या नहीं कर लूँगा, सूर्य नहीं छिपेंगे। इतना दृढ़ विश्वास है। तो इसका भाव यह है कि यदि आदमी सूर्यकी उपासना करे तो सूर्यको भी उस आदमीकी उपासनापर निगाह रखनी पड़ेगी। ऐसा जिसका नियम है कि सूर्यके रहते ही सन्ध्या करनी है तो सूर्य भी उसके लिये ठहर जाते हैं। तो यह बात देखनेमें कितनी आश्चर्यकी मालूम देती है। आजकल तो ऐसा दीखता ही नहीं है कि सूर्यभगवान् भी ठहर सकें। किंतु महाभारतमें उसने यही बात कही है। इसी प्रकारसे पतिव्रता स्त्रीकी बात सुनी गयी है।

एक पतिव्रता स्त्रीने कहा कि सूर्य उदय होनेसे यदि मेरे पति ही मर जायँ तो सूर्य उदय ही क्यों हो? सूर्यकी चाल बन्द हो गयी और सूर्य ठहर गये। जयद्रथके लिये सूर्यभगवान्‌ने ऐसी आश्चर्यजनक बात दिखलायी कि जब जयद्रथ मारा गया तो हो-हल्ला मचा कि यह अन्याय हो गया, सूर्यके अस्त होनेपर जयद्रथ मारा गया। भगवान् वहाँ खड़े थे, बोले—सूर्यभगवान् अभी मौजूद हैं, प्रत्यक्ष बात है। सूर्य अभी अस्त नहीं हुए हैं। वे दीख रहे हैं। भगवान् सृष्टिकी रचना करनेवाले हैं, वे चाहे जैसा कर सकते हैं। भगवान्‌के बिना भी सन्ध्या करनेवाले व्यक्तिका प्रभाव और पतिव्रता स्त्रीका प्रभाव आपने देखा। किंतु आजकल कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं दिखायी दे रहा है। क्या मालूम सब मर गये या चले गये; परंतु उस समय ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक बातें होती थीं। आपको विश्वास करना चाहिये कि ये बातें जो शास्त्रोंमें लिखी हैं, वे ठीक ही हैं, कोई गलत नहीं है; क्योंकि उस समयके लोग नियमके बड़े पक्के थे। चाहे जो हो, अपने नियमका पालन करते थे और अपनेमें यह दोष आ गया है कि थोड़ी भी आपत्ति यदि आ गयी तो अपने सुभीतेके वास्ते नियमको छोड़कर अलग जा खड़े होते हैं।

डॉक्टरकी दवाइयोंमें जो मदिरा मिली रहती है, इनके सेवनमें समझो कि कितना भारी महापाप है, किसी प्रकारसे भी यदि एक बार भी मदिरा पी ले तो बड़ा भारी दोष होता है, इसका शास्त्र विरोध करता है। यदि आप इसका प्रायश्चित्त करना चाहें तो गायत्रीमन्त्रका, जिनका यज्ञोपवीत हो गया, उनको एक हजार जप रोज तीन साल या एक सालतक करनेका विधान है। यदि रोज पीये तो सोचो वह कितने वर्ष करे? तो डॉक्टरी दवाई कोई मुँहसे खा लेते हैं, कोई इंजेक्शनके द्वारा खाते हैं, थोड़ी भी आपत्ति आ जाय तो

लोग उसे बर्दाश्त नहीं करते झट च्युत हो जाते हैं। किंतु वे लोग नियमके इतने पक्के थे कि प्राण भले ही चला जाय, परंतु अपने धर्मका त्याग नहीं करते थे। तभी तो धर्म उनको प्रत्यक्ष फल दिखाता था।

राजा युधिष्ठिरपर भारी-से-भारी आपत्ति आयी, किंतु उन्होंने अपने धर्मका त्याग नहीं किया। उसका यह प्रभाव था कि जिस देशमें राजा युधिष्ठिर वास करते, उस देशमें अकाल नहीं पड़ता, महामारी नहीं आती, दैवी प्रकोप नहीं होते। धनकी वृद्धि होती, धान्यकी वृद्धि होती, सत्यकी वृद्धि होती—इन चीजोंकी वृद्धि होती। चूँकि वे सत्य बोलते थे, इस वास्ते सत्यकी वृद्धि होती। जो आदमी धर्मका पालन करता है, उसका इतना प्रभाव पड़ता है कि उसके सामने दूसरे लोग भी धर्मका पालन करने लग जाते हैं। यहाँतक दिखलाया गया है कि युधिष्ठिरके शरीरसे खून निकलकर यदि जमीनमें गिर जाय तो १२ वर्षतक अकाल पड़ जाय। राजा नहुषने उनसे वार्तालाप किया तो नहुषके पापका नाश हो गया। बातचीत करनेसे, प्रश्नोत्तर करनेसे, दर्शन करनेसे पापका नाश होता है। तो यह कितने महत्त्वकी बात है। किंतु वे धर्मपर डटे रहे, इसलिये मृत्यु भी उन्हें नहीं मार सकी। वे अपने इसी शरीरसे स्वर्ग चले गये। उनकी सब जगह गति थी, चाहे स्वर्ग हो चाहे वैकुण्ठ। जहाँ इच्छा होती वहीं चले जाते। तो उनमें यह एक अलौकिक शक्ति देखी गयी। सत्यका वे पालन करते थे। सत्यके प्रभावसे उनके रथका पहिया जमीनसे ऊपर चला करता, जब युधिष्ठिर रथपर पैर रखते तब जमीनसे रथके पहिये ऊपर उठ जाते। अपनी आयुभरमें एक ही बार वे झूठ बोले। उस झूठका नतीजा यह हुआ कि उसी दिन उनके रथके पहिये जमीनपर गिर गये, जिस दिन उन्होंने अश्वत्थामाके मरनेके विषयमें थोड़ा जबान दबा करके कह दिया कि अश्वत्थामा तो मरा किंतु मरा हाथी। तो शब्द तो साँच कहा, किंतु गुरु द्रोणाचार्यने सुना नहीं कि हाथी मरा या मेरा बेटा ही मरा है। उन शब्दोंको सुनकर गुरुने अपने प्राण त्याग दिये। तो ऐसे भी झूठ बोलनेका पाप युधिष्ठिरको लगा; क्योंकि द्रोणाचार्यने जो समझा, वही बात सच मानी गयी। युधिष्ठिरकी बात सच नहीं मानी गयी। बात सच नहीं समझायी गयी। आप किसीको कोई बात कहें और समझायें तो वह जो समझे, वही बात सच मानी जाय, वही ठीक है। यदि वह ठीकसे नहीं समझे तो अपने कहनेका कोई मूल्य नहीं है। अपनी नियतमें कोई दोष नहीं होना चाहिये। शब्द तो कह दिया किंतु यदि वह कपटयुक्त है तो वह मिथ्या है। इस प्रकार सत्यके प्रभावको भी दिखाया है और सत्यके त्यागका प्रभाव भी दिखाया है। इन सब बातोंको याद करके अपने नियम-पालनमें बहुत ही दृढ़ रहना चाहिये।

अपने लोगोंने कितनी बार सत्संगका नियम बनाया। भाईजी वगैरहने बनाया, कई दिनतक उसे काममें लाया फिर छोड़ दिया, फिर बनाया फिर छोड़ दिया। तो उससे क्या लाभ हुआ? लाभ तो तभी हो सकता है, जब आप छोटेसे नियमपर भी दृढ़ रहें—कायम रहें। एक तरफ तो प्राणका पालन करें और एक तरफ नियमोंका पालन करें। यह कैसे? कल ही हमने कथा पढ़ी कि शृंगी ऋषिने राजा परीक्षित्‌को शाप दे दिया तो उसके पिता महर्षि शमीकने उसे उपालम्भ दिया, कहा—वत्स! वह राजा है, धर्मात्मा है, सब प्रकारसे रक्षा करता है, अत: राजाको इस प्रकार शाप नहीं देना चाहिये। तुमने यह बहुत ही गलती की है, तो पुत्रने जोर देते हुए कहा कि नहीं मैंने जो कुछ किया है, वह ठीक किया है। मेरी बात एकदम सोलहों आने होगी। मैंने कभी भी—विनोदमें भी झूठ नहीं बोला है। मैं स्वेच्छापूर्वक और स्वाभाविक रूपसे बोला हूँ, उसमें भी कभी मिथ्या नहीं बोलता। मेरा वचन सत्य ही होगा। राजाको अवश्य मरना ही होगा। फिर पिताने भी उसका समर्थन किया कि ठीक है तू सत्यवादी है, बालकपनेसे ही सत्य बोलता है, मैंने कभी भी तेरी बात मिथ्या नहीं सुनी तो तेरा वचन सत्य होगा। फिर भी यह बात कहता हूँ कि तू अभी बच्चा है, मैं तेरा पिता हूँ, पिताका कर्तव्य होता है कि उसके सामने लड़के सदैव बच्चे ही हैं। इसलिये अब भी मेरा यही कर्तव्य है कि यदि तू गलती करे तो तुमको मैं समझाऊँ कि यह बात तूने गलती की है। मैं राजा परीक्षित्‌को यही बात कहूँगा कि मेरे मूढ़मति लड़केने जो आपको शाप दे दिया, वह शाप तो मिथ्या होगा नहीं, तो तुम इसके बचावका प्रयत्न करो। तुमने जो कुछ किया, उसके लिये सावधान कर दिया है। उसका भेजा हुआ जो शिष्य था, वह भी बहुत ही सदाचारी था। उसने राजाकी सभामें जाकर यह बात ज्यों-की-त्यों जैसे ऋषिने कही थी, राजासे कह दी। राजाने भी सुनकर यही निश्चय किया, ठीक है मेरा बड़ा भारी अपराध है। राजाने कहा कि यदि उनके शापसे मैं मर

जाऊँगा तो इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, परंतु मुझसे जो यह अपराध हो गया, इसकी मुझे बड़ी भारी चिन्ता है। शाप देनेवालेपर दोष नहीं लगाया, अपने ऊपर ही दोष लगाया कि मैंने बड़ी भारी गलती की, जो इस प्रकारसे बैठे हुए ऋषिके गलेमें साँप डाल दिया—मरा हुआ साँप डाल दिया। उस धैर्यशाली ऋषिके गलेमें साँप डाल दिया तो भी वह वैसा ही बैठा रहा—साँप जैसे डाल दिया, वैसा ही रहा। यह नहीं कि राजापर क्रोध किया। वह साँप कन्धेपर पड़ा ही रहा। ऋषिमें कितना बड़ा धैर्य था। उनके पुत्रने उसके बदलेमें शाप दिया। आजकलका पिता कहता कि तूने बहुत अच्छा काम किया। उसने जैसी दुष्टता की वैसा ही तुमने उसे शाप दिया। किंतु शमीक ऋषिने यह बात कही कि बेटा! तूने यह बात अनुचित की, तेरा यह करना उचित नहीं था। राजाके पास ऋषिने यही बात कहलायी कि मेरा मूढ़मति लड़केने बाल-चपलताके कारण जो आपके द्वारा अपराध हो गया उसके बदलेमें शाप दे दिया, यह काम अनुचित है। इसलिये हर एक बातमें अपनेको शिक्षा लेनी चाहिये। आजकल मैं महाभारत पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसी शिक्षाकी बात मिलती है। यों तो महाभारत मैंने पढ़ा-सुना है, पर जब वह सामने आ जाता है तो एक नये-नये भावकी जागृति होती है और उससे बड़ी शिक्षा मिलती है कि देखो उसमें कैसी दृढ़ता थी—ऐसे ही मनुष्यमें दृढ़ता होनी चाहिये।

अपनेमें तो दृढ़ता नहीं है इसलिये सफलता नहीं मिलती। आदमी डट करके रहे तो उसमें सफलता है। इसलिये अपना जो कर्तव्य है, नियमोंका पालन है, उसे सदा काममें लाना चाहिये। किसी प्रकारसे उससे विचलित नहीं होना चाहिये। कोई भी आपत्ति आ जाय, कानूनकी आपत्ति आ जाय, शरीरकी आपत्ति आ जाय—कानूनकी हो या भाईकी हो या सरकारकी हो। यद्यपि सरकारका कानून नहीं मानोगे तो सरकार दण्ड देगी। इसी तरहसे ईश्वरके कानूनकी बात आ जाय तो उसमें भी खूब सतर्क रहना चाहिये। छोटी-सी भी बातका यदि आप पालन करें तो उसमें कायम ही रहना चाहिये।

कल महाभारतमें ये सब बातें पढ़नेमें आयीं। इससे मनमें यह भाव उठा कि मनुष्यको खूब मजबूती रखनी चाहिये। अपने धर्मके ऊपर खूब कायम रहना चाहिये। दो-तीन दिन पहले उपमन्युकी बात पढ़ी। तो उसमें गुरुजीने यह बात कह दी कि उपमन्यु! तू भिक्षा लाकर सीधे मुझे दे देता है तो फिर तू मोटा-ताजा कैसे है? मैं तुमको खानेके लिये भिक्षा देता नहीं! तो बिना खाये तू मोटा-ताजा कैसे है? वह बोला—भिक्षा मैं दूसरी बार माँग लाता हूँ। गुरुजीने कहा—यह शास्त्रके विरुद्ध है। दो बार भिक्षा नहीं माँगनी चाहिये। भिक्षामें एक बार जो कुछ मिले, बस उतना ही ठीक है। दो बार भिक्षा कभी नहीं माँगनी चाहिये। वह बोला—ठीक है, अब नहीं माँगूँगा। फिर भी वह मोटा-ताजा ही रहा, फिर गुरुजीने पूछा—तू सारी भिक्षा लाकर मुझे दे देता है और मैं तुमको भिक्षा देता नहीं हूँ, दूसरी बार तुम लाते नहीं हो तो, तुम ऐसे मोटे-ताजे क्यों हो? वह बोला—मैं गायका दूध पी लेता हूँ। गुरुने कहा—नहीं, गायका दूध नहीं पीना चाहिये। तू दूध पी जायगा तो बछड़ा भूखा रह जायगा। वह बोला—ठीक है, नहीं पीऊँगा। फिर भी वह मोटा-ताजा रहा! फिर गुरुजीने कहा—तू दूसरी भिक्षा भी नहीं लाता, न गायका दूध ही पीता है फिर भी मोटा-ताजा कैसे है? वह बोला—जब बछड़ा दूध पीता है तो वह झाग करता है, उस झागको पी लेता हूँ। बछड़े तो बहुत हैं न! उससे पेट भर जाता है। गुरुजीने कहा—बछड़े जो दूध पीते हैं, वे तेरी खातिर ज्यादा झाग छोड़ देते हैं तो वह झाग भी तुमको नहीं पीना चाहिये। तो वह बोला—ठीक है, नहीं पीऊँगा, अब वह न तो झाग पीता, न खाता। भूखों मरनेलायक हो गया, जब भूख लग जाती तो आकका पत्ता खा लेता, आकका पत्ता खानेसे वह अन्धा हो गया, जिससे वह एक दिन कुएँमें गिर गया, गुरुने शिष्योंसे पूछा कि उपमन्यु क्यों नहीं आया है? फिर बोले—ठीक है, उसकी जंगलमें खोज करूँ, जंगलमें खोजने गये तो वह कुएँके अन्दर मिला। गुरुजीने पूछा—उपमन्यु! कुएँमें कैसे गिर गये? वह बोला—महाराज! भोजन तो सब एक प्रकारसे बन्द हो गया। भूख लगी, आकका पत्ता खा गया, जिससे अन्धा हो गया। गायोंको चराते-चराते कुएँमें गिर गया। तो गुरुजीने कहा—अश्विनीकुमारका जो स्तोत्र है, उसका तू पाठ कर। यह कहकर गुरुजी चले गये। उसने कुएँमें ही अश्विनीकुमारके स्तोत्रका पाठ किया। अश्विनीकुमार आये। आकर उससे बोले कि तू यह अमृत पी ले। वह बोला—मैं गुरुके दिये बिना यह अमृत कैसे पीऊँ? फिर अपनेसे अश्विनीकुमारने नेत्र भी दिया, बल भी दिया। इसके बाद वह गुरुके पास आया। सारी बात

कही। तब गुरुने कहा कि तू अब अपने घर जा। तुझे सारे शास्त्रोंका ज्ञान हो जायगा, तेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। तेरा सारा काम सिद्ध हो जायगा। वेदोंका—ब्रह्मका उसे सब ज्ञान हो गया। इस प्रकारसे गुरुने उपदेश दे दिया। सो कोई बात हो तो उसकी दृढ़ताकी ओर ख्याल करना चाहिये, जो बात कह दी उसे जरूर करना चाहिये, कितना भी कष्ट हो। वह काम तो करे ही नहीं जिस बातकी शास्त्रने मनाही कर दी, या अपने माता हैं, पिता हैं, मालिक हैं, बड़े हैं, कोई भी बात अपनेको कह दी, हुकुम कर दिया, उसके लिये अपने जीवनमें आपको कभी न नहीं करना चाहिये, चाहे जो कुछ भी हो जाय। जिस बातकी मनाही कर दी गयी, वह बात वहीं बन्द कर दी तो उसके आशीर्वादसे ही उसका कल्याण हो जाय। उसने पढ़ाया-लिखाया कुछ भी नहीं, यही उसकी परीक्षा ली—हुकुम दे दिया। बिना देखे कि यह कहाँतक हुकुमका पालन कर सकता है। उसपर इतनी कड़ाई की कि हदसे अधिक। समझो कि उसको आकका पत्ता खाना पड़ा, जिससे वह अन्धा हो गया और कुएँमें गिर गया। फिर भी उसे कुएँसे नहीं निकाला। कुएँमें ही पड़ा रहा। तब भी कोई विचार नहीं आया। उसे जो आज्ञा देते, वह करता। यह भी नहीं कहा कि अश्विनीकुमार यदि अमृत दें तो तू मत पीना। खानेके लिये पूआ दिया, उसने न तो पूआ खाया और न अमृत पिया। अन्तमें कार्यकी सिद्धि हो ही गयी; क्योंकि वह हुकुम मानता गया। अन्य शिष्योंद्वारा यह सब बात देखी गयी। वे तीन शिष्य थे। तीनोंमें ही यही बात थी कि गुरुने जो कहा—इन लोगोंने उसका पालन किया। वे शिष्य आगे जाकर फिर आचार्य बने और अपने भी शिष्य बनाये। उन्होंने इतनी कड़ाई नहीं की। कहते कि हमने गुरुकी कड़ाई देखी है, हमने गुरुकी जितनी कड़ाई सही है हम उतनी कड़ाई नहीं करेंगे। इसी तरहसे उस समयमें शाप देना तो गुरुके हाथमें था। इसमें भी देर नहीं होती। इस समयमें जरा भी ऊक-चूक हो जाय तो उठाकर बेंत मार दो, पर उस समयमें तो वचनका ही बेंत था। जरा-सा ऊक-चूक हो जाय तो शाप देनेके लिये तैयार। उत्तंक ऋषि अपने गुरुकी आज्ञा-पालनमें एकदम निपुण रहा, उसे कितना कठिन काम बतलाया कि गुरुआनीने कहा है—'अमुक राजाकी स्त्रीका कुण्डल ले आओ, फलाने दिन पर्व है, उस दिन वह कुण्डल पहन करके ही पर्व मनाऊँगी।' चौमासेका पर्व था। उसके आनेमें थोड़ी देर हुई, जिससे वह उन्हें शाप देनेके लिये तैयार हो गयी। बोली कि अगर तू समयपर नहीं पहुँचा होता तो मैं तुझे शाप दे देती। एक प्रकारसे तलवार निकालकर मारनेके लिये तैयार रही। इस प्रकारसे उसके हुकुमका पालन करना आश्चर्यजनक था। प्राण भी देनेको तैयार रहता। उनमें शक्ति थी, अपने लोगोंमें बिलकुल वह बात देखनेमें नहीं आती, और चाहते हैं कि फल मिल जाय, मुक्ति मिल जाय। यद्यपि नियमका पालन करना बड़ा कठिन है, फिर भी नियमका पालन अवश्य करना चाहिये।

आरुणिको धौम्यमुनिने आज्ञा दी कि तू जा खेतमें—जंगलके खेतमें जो पानी जा रहा है, उसको रोक। बड़े कष्टसे पहले फावड़ेसे पानी रोकनेकी चेष्टा की, पर वह पानी रुका ही नहीं। तो वह खुद वहाँ पसर गया—लेट गया। लेटकर पानीको रोक दिया।

रात्रिके वक्त आरुणि नहीं आया तो शिष्योंसे पूछा कि आरुणि क्यों नहीं आया? तो सबने कहा—उसे मेंड़ बाँधनेके लिये भेजा गया था। गुरुजीने कहा कि चलो, उसकी खबर लें। गुरुजी सब जानते थे, लेकिन वे एक प्रकारसे दूसरे शिष्योंको दिखलानेके लिये कि देखो, वह कैसा नियमका पालन कर रहा है, गुरुजी शिष्योंके साथ गये। खेतके निकट पहुँचकर आवाज दी—आरुणि! आरुणि!! ओ आरुणि!!! कहाँ हो, आरुणिने गुरुकी आवाज सुनी, बोला—गुरुजी! मैं यहाँ हूँ, पानी रुक नहीं रहा था, लेटकर मैं पानी रोके हुए हूँ। गुरुजी उसकी आवाज सुनकर उसके पास गये, उन्होंने कहा—उठो बेटा आरुणि! गुरुजीके आदेशसे आरुणि उठा और गुरुजीके चरणोंमें नमस्कारकर बोला—गुरुजी! अँधेरी रात थी, आपने मेंड़ बाँधनेके लिये मुझे भेजा था। माटीसे किसी प्रकार मेंड़ बाँध न सका तो खुद पसर गया और पानी रोक दिया। पानीको रोके हुए था और क्या आज्ञा है? मैं वहाँ फिर जाकर बाँधूँ या और कोई हुकुम है। जब आपने पुकारा तो मैं चला आया। पानी बह रहा है। गुरुजी बोले—बेटा आरुणि! अब तुम्हारा काम सिद्ध हो गया, तू अपने घर जा। गुरुके हुकुमका पालन करनेसे सब शास्त्र बिना पढ़े ही उसे आ गये।

आध्यात्मिकताकी अपेक्षा

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

संसारके सभी प्राणी परमेश्वरके ही पुत्र हैं, सभी उसीके प्रिय हैं, इस दृष्टिसे सभीका परस्पर भ्रातृभाव है। वेदान्त-दृष्टिसे तो सब परमेश्वरके स्वरूप ही हैं। ऐसी स्थितिमें परस्पर प्रेम, कल्याण-कामना स्वाभाविक ही है। मार-काट, आपसी संहार सिवा मोहके अन्यथा कथमपि नहीं बन सकता। विचारशील प्राणी तो सम्पूर्ण प्राणियोंमें परमेश्वर-भावना ही रखते हैं। उनकी दृष्टिमें अपकारीके प्रति भी अहितबुद्धि नहीं होती। वे किसी भी स्थितिमें सर्वाधिष्ठान भगवान्‌को नहीं भूलते। 'गीता' ने बतलाया है—'**समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥**' अर्थात् जो सबमें परमेश्वरको और परमेश्वरमें सर्वको देखता है, उससे भगवान् कभी परोक्ष नहीं होते और वह कभी परमेश्वरसे परोक्ष नहीं होता। जो सर्वत्र विराजमान, सम परमेश्वरको देखता है, वह आत्महनकी गतिसे बचकर परागतिको प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि समतामें स्थित हो जाती है, वह संसार-कालमें भी संसारके प्रपंचसे असंस्पृष्ट रहता है।

जिस तरह अपने पैरमें काँटा चुभनेपर कष्ट होता है, उसी तरह दूसरोंको भी कष्ट होगा, ऐसा समझ लेनेपर प्राणिहिंसामें कथमपि प्राणियोंकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे अपने प्रति अत्याचार, अन्याय असह्य होता है, वैसे ही दूसरोंको भी असह्य होगा, ऐसा समझनेपर दुर्जनताका अन्त अवश्य होता है, अन्यथा जैसे एक व्यक्ति या समाज दूसरोंके प्रति अन्याय करता है, वैसे ही दूसरा व्यक्ति या समाज उसके प्रति करेगा। ऐसी स्थितिमें अन्यायका अन्त कभी भी नहीं हो सकेगा, कोई भी प्राणी सुखकी नींद नहीं सो सकेगा। सब लोग परस्परकी आशंकाओंसे त्रस्त रहते हैं, इसलिये अहिंसा, सत्य, न्याय आदिका सर्वत्र समानरूपसे आदर किया जाता है। यह सबके कामकी वस्तु है। विशेषतः ईश्वरवादी तो अनेक रूपोंमें प्रकट परमेश्वरके किसी भी रूपकी अवहेलनामें परमेश्वरका ही अपमान समझता है। जैसे किसीके कण्ठमें माला पहनायी जाय और उसके आँखमें काँटा चुभाया जाय तो उसकी प्रसन्नताकी आशा व्यर्थ ही होती है, वैसे ही परमात्माकी पूजा करते हुए भी यदि उनके अंश जीवोंको सताया जाय, उनपर अत्याचार किया जाय तो परमेश्वरकी प्रसन्नताकी आशा करना निरी भूल है। इसी दृष्टिसे अध्यात्मवादी तत्त्वज्ञ अपराधीको दण्ड देते हुए, संग्राममें शत्रुसे लड़ते हुए भी उन सबके हितैषी ही रहते हैं। जैसे माता-पिता एवं गुरुजन पुत्र और शिष्योंके कल्याणार्थ ही उनका ताड़न करते हैं, वैसे सर्व अनर्थोंके मूलभूत अधर्म, अन्यायको मिटानेके लिये ही दुष्ट-निग्रहादि कार्योंमें उनकी प्रवृत्ति होती है। '**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।**' (पुत्रके कुपुत्र होनेपर भी माता कुमाता नहीं होती)-के अनुसार किसी भी जीवका अकल्याण परमेश्वरको अभीष्ट नहीं होता। संग्राम करते हुए भी भगवतीके हृदयमें अतिदुष्ट दैत्योंपर भी कृपा बनी रहती है। कर्कशताके साथ तीक्ष्णातितीक्ष्ण शस्त्रास्त्र-प्रयोग करते समय भी उनके हृदयमें दया ही बनी रहती है अन्यथा कुपित दृष्टिसे ही वे विश्वके समस्त दैत्योंका संहार कर सकती थीं, फिर शस्त्रप्रयोगकी क्या आवश्यकता थी? शस्त्र-प्रयोग तो केवल इसलिये था कि शस्त्रोंसे पवित्र होकर दुष्ट दैत्य लोग भी सद्‌गतिको प्राप्त कर लें। इसी दृष्टिसे परमेश्वरके साथ वैर करनेवालोंको भी अन्तमें सद्‌गति ही हुई। इस दृष्टिसे परमेश्वर एवं उनके भक्तोंके हृदयमें कभी भी प्राणियोंके अकल्याणकी भावना नहीं होती। वे कभी भी प्राणिमात्रके प्रति अपने अकृत्रिम घनिष्ठ सम्बन्धको नहीं भूलते। जितनी मात्रामें अनर्थकारिणी उपर्युक्त विस्मृति मिटती है, उतनी ही मात्रामें विश्वशान्ति होती है। जैसे प्रत्यक्षानुभूत स्वाप्निक प्रपंच जागते ही उपेक्षणीय सिद्ध हो जाता है, वैसे ही सर्वत्र परमेश्वर-भावनासे कोलाहलपूर्ण संघर्ष भी मिथ्या सिद्ध हो जाता है। अतः इस समय परमावश्यकता इस बातकी है कि भौतिकवादकी प्रधानताको छोड़कर अध्यात्मवादका विस्तार किया जाय।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

यहाँपर पहले एक सन्त थे, मंगलनाथजी महाराज। बड़े अच्छे महात्मा रहे। प्रारब्धवश उनपर कुछ मुकदमे हो गये थे। उनको मुकदमोंके दृष्टान्त याद आते थे। एक दिन वे बोले कि भैया! एक बात याद रखो—अगर मालिककी चीजको अपनी मान बैठोगे तो तुम्हारी चीज तो रहेगी नहीं, वह तुमसे छिन जायगी, तुमपर बेईमानीका मुकदमा चलेगा और तुम्हें जेल हो जायगी। चीज भी गयी, इज्जत भी गयी और जेलकी सजा भी हो गयी।

ठीक यही बात, सारी चीज भगवान्‌की, सारा सामान भगवान्‌का और हम कह दें ये तो हमारा, तो मरते समय तो अपने साथ चितापर लेकर नहीं जाओगे, मालिककी चीज रहेगी मालिककी, हमने उसको मेरा कहा, मेरा माना, ये बेईमानी की। इस चोरीका—इस अपराधका हमें दण्ड मिलेगा। चीज हमारी रहेगी नहीं, मालिककी चीज मालिककी रहेगी। मालिककी चीज मालिकको हम बराबर देते रहें ईमानदारीके साथ, मालिककी चीजपर मालिकका आधिपत्य मानें, अपना मेरापन तो केवल सेवाके लिये रहे। कोई बोले—तुम कौन? तो बोले—सेवक। ये मेरा और मेरी चीजका जो भाव है; वह सारा सेवावृत्तिमें आकर केन्द्रित हो जाय—

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।'

मैं सेवक सचराचर और सभी मेरे स्वामी भगवान्‌का मंगलमय रूप। इस प्रकारसे अपनेको हटा दे, भगवान्‌को बैठा दे। जगत्‌में मेरेपनको दूर कर ले और उसकी जगह भगवान्‌को बैठा दे और अपने ऊपर भगवान्‌का पूर्णाधिकार स्थापित करवा दे। भगवान्‌से कह दे कि तुम अब स्वच्छन्दतासे कहो कि अब ये मेरा है, संकोच करते हैं न भगवान्। बोले मेरा कह दें और कलको इससे काम लें तो कह देगा 'न महाराज!' ये कैसा सम्बन्ध! गड़बड़ होती है ये बात। भगवान्‌से हम कह दें, भगवान्‌को हम समझा दें, भगवान्‌के दिलमें बैठा दें कि हम तुमपर कभी सन्देह नहीं करेंगे। हम कभी तुम्हारे अधिकारपर सन्देह नहीं करेंगे, तुम जो चाहो, जब चाहो, जैसे चाहो, जहाँ चाहो, अपनी चीजको अपनी भाँति तुम बरतो, तुम्हारा ही मेरेपर पूर्ण अधिकार है अर्थात् तुम ये कह दो कि ये मेरा, ये मेरा।

इस प्रकार अपनेको हम भगवान्‌का बना लें तो क्या होगा? भगवद्भावका विकास हमारे अन्दर होगा। ये कसौटी है। जबतक हमारे अन्दर जगत् बसता है, तबतक हमारे जीवनका रूप कुछ और रहेगा और जब हमारे अन्दर भगवान् आकर बस जायँगे, तब हमारे जीवनका रंग-रूप पलट जायगा, चाहे ढाँचा यही रहे। रंग-रूप पलटनेपर क्या होगा? ये अनुभूति होगी उसको। फिर ये सारी जितनी भी गड़बड़झालेकी चीजें हैं, ये निकल जायँगी। वैसी अवस्थामें हम कह सकेंगे कि हमारे जीवनमें भगवान् आ गये, इसके पहले हम भगवान्‌से प्रार्थना करें कि भगवान् हमारे हो जायँ। एक तुकबन्दी सुनाता हूँ आपको इसी भावकी। ये भगवान्‌से कहता है—

जबतक जगमें रहते मुझको 'मेरा' कहनेवाले।
तबतक तुम हो दूर खड़े हँसते हो सदा निराले॥
जबतक रखते मोह-ग्रस्त मुझको ये डाले घेरा।
तबतक तुम कहते सकुचाते खुलकर मुझको 'मेरा'॥
जबतक जगके प्राणि-पदार्थोंको मैं कहता 'मेरा'।
तबतक तुमको कभी नहीं कह पाता खुलकर 'मेरा'॥
जबतक तुमको ही मैं 'मेरा' नहीं बना हूँ पाता।
तबतक 'मेरे-मेरे'-का दावानल सदा जलाता॥
दया करो, इस मोह-पाशसे मुझको तुम्हीं छुड़ाओ।
प्यारभरे शब्दोंमें मुझको कह 'मेरा' अपनाओ॥
समझूँ मैं भी एकमात्र तुमको ही केवल 'मेरा'।
उठे तुरत मेरे जीवनसे सब मायाका डेरा॥

[पद-रत्नाकर पद-संख्या १००]

जब ये मायाका डेरा जायगा तो जीवनमें भगवत्ता आयेगी, भगवान् मेरे हो जायँगे और मैं भगवान्‌का हो जाऊँगा तब संसारका हमारा अनुभव बदलेगा, वह अनुभूति कैसी होगी—

जगमें सुख-दुख, लाभ-हानि, चिरजीवन-मृत्यु, मान-अपमान।
सभी तुम्हारे खेल, सभीमें भरे तुम्हीं, मेरे भगवान॥
इससे मिलता मुझे सर्वदा सबमें सुखद तुम्हारा स्पर्श।
अतः नहीं हो पाते मनमें कभी शोच, उद्वेग, अमर्ष॥
किसी अवस्थामें भी होती नहीं अशान्ति, नहीं उर-दाह।
हँसमुख सदा दीखता, प्रभुका नित्य नवीन पूर्ण उत्साह॥

दुःख-मरण दारुणमें भी तुम मधुर दिखाते मोहन रूप।
होता सब विस्मरण, एक बच रहता चिन्मय मोद अनूप॥
छाये रहते सतत नित्य प्रति-दिक्‌में परम शान्ति-आनन्द।
हो चाहे कैसा भी कहीं मनोहर-घोर काण्ड स्वच्छन्द॥
सभी दृश्य हैं, सभी तुम्हीं लीलामयके अभिनय सुन्दर।
सबमें तुम्हीं नृत्य करते नित नटनागर ऋषि-मुनि-मन-हर॥

[पद-रत्नाकर पद-संख्या १२४८]

प्रत्येक अवस्थामें, प्रत्येक दशामें, प्रत्येक परिस्थितिमें, प्रत्येक प्रसंगमें, प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक वस्तुमें भगवान् जब जीवनमें आ जाते हैं तो भगवान्‌का स्पर्श प्राप्त होता है, भगवान् उसके अन्दर-बाहर भर जाते हैं। वैसी अवस्थामें जगत्‌का जो रूप आज है, उसमें भी हमको भगवान्‌का दर्शन होना चाहिये, किंतु जरा-सी प्रतिकूलता होते ही हम क्षुब्ध हो जाते हैं, जरा-सी किसीके द्वारा अपनी अमंगल कल्पना करते ही उसपर क्रोधित होते हैं, हिंसा करने लगते हैं, बुरा चाहने लगते हैं, जरासे अपने मनमें, मनके अनुसार न होनेपर भी हम दूसरोंको नीच मानने लगते हैं। दुःखमें, अपमानमें, मृत्युमें, हानिमें—ये हमारे बनाये हुए नाम हैं; हानि, दुःख, मृत्यु, मरण, अपमान ये सब हमारे बनाये हुए, हमारे निर्माण किये हुए नाम हैं। इन सारे नामोंमें सारी परिस्थितियोंमें एकमात्र भगवान् खेलते हैं, वही नाचते हैं, हम उनका नाच नहीं देख पाते। इसलिये कहीं क्षुब्ध होते हैं, कहीं अमर्ष करते हैं, कहीं हर्षान्वित हो जाते हैं, कहीं शोक करते हैं, कहीं भय करते हैं। जब भगवान्‌की भगवत्ता हमारे हृदयमें, जीवनमें आ जायगी, जब हम भगवान्‌को मेरा कहेंगे और जब भगवान् हमपर पूर्णाधिकार करके अपना मेरा कह देंगे; तब स्वाभाविक जीवनमें ये चीजें खिल उठेंगी, प्रकाशित हो उठेंगी, हमारा अपना जीवन भगवान्‌का जीवन बन जायगा। दैवी-सम्पत्तिके फूल फिर खिलाने नहीं पड़ेंगे, इनके बीज फिर बोने नहीं पड़ेंगे।

जहाँ हम भगवान्‌के आश्रित हुए, भगवान्‌को मेरा कहा, वहाँ दैवी-सम्पत्तिके बगीचेके सारे पुष्प अपने-आप खिल उठेंगे, वे कभी मुरझायेंगे नहीं। ये फूल मुरझाते हैं, वे फूल मुरझायेंगे नहीं, उनका विकास उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक और सुन्दर होगा, मनोहर होगा, सुगन्धमय होगा, सौरभमय होगा और उस बगीचेके—हमारे जीवन-वाटिकाके सुमनोंकी सुगन्धोंसे तमाम विश्व व्याप्त हो जायगा।

एक शंकराचार्य, एक चैतन्य—क्या किया इन लोगोंने? सारे जगत्‌को सुवासित कर दिया अपने जीवन-वाटिकाके सुमनोंके सौरभसे, ये सौरभ कहाँसे आया? उनके जीवनमें ये अबीर—महान् मंगलमय सुगन्ध कहाँसे उत्पन्न हुई?

जो चिर सौरभमय है, जो चिर सुगन्धमय है, जो नित्य-नित्य मंगलमय है, जो नित्य-नित्य परम आनन्दमय है, जहाँ भय-शोकको स्थान नहीं, जहाँ अमंगलके लिये जगह नहीं; उन मंगलमय, आनन्दमय, शान्तिमय, प्रेममय, सौन्दर्य-माधुर्य-सुधानिधि भगवान्‌के साथ उनका सम्पर्क हो गया। उनके जीवनमें भगवान् आ गये।

बस, भगवान् जहाँ जीवनमें आये, वहाँ अपने-आप सारी चीजें हो गयीं, सारे संकल्प उसके मिट गये। अब भगवान् उनके अन्दर प्रविष्ट हो गये, उनकी बुद्धि भगवान् बने, मन भगवान् बने।

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुखसदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥
तुम्हीं एक बस, आवश्यकता, तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल सभी विधि हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥
तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान॥
सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान।
बाह्याभ्यन्तर नित्य निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान॥
कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग।
घुले-मिले रहते करवाते करते निर्मल रस-सम्भोग॥
पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न।
हुए सभी संकल्प भंग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न॥
भोक्ता-भोग्य सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग।
मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग॥

[पद-रत्नाकर पद-संख्या ६१२]

इस प्रकार जब भगवान् मेरे बने और मैं भगवान्‌का बना तो बस, भगवान् ही भगवान् रह गये। भगवान्‌की सत्ता, भगवान्‌की महत्ता, भगवान्‌की भगवत्ता जीवनमें जाग्रत् हो गयी। यही जीवनका असली और सबसे ऊँचा लक्ष्य है। इसीकी प्राप्ति जीवनमें हो जाय—इसीके लिये सत्संग आदि ये सभी चीजें हैं, साधन-वाधनसे कुछ होगा नहीं, साधनका अभिमान भले ही हो जाय, पर जो कुछ होगा, भगवान्‌की कृपासे ही होगा।

आध्यात्मिक लीलाका रहस्य

(ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

साधु-सद्गुरुका हृदय भक्तिका प्रांगण (आँगन) होता है। उनके हृदयमें अमृतकुण्ड होता है। उनके विशुद्ध प्रेम एवं निष्काम भक्तिभावके कारण भगवान् सन्तों एवं भक्तोंके वशमें हो जाते हैं। उनके द्वारा बतलाये गये वैध-कर्मों यथा—जप, ध्यान, अनुष्ठान, उपासना, तीर्थ-यात्रा एवं तप आदिके द्वारा जीव कुकर्मोंसे छूटकर प्रभुकी प्रेमा-भक्तिको प्राप्त कर लेता है।

निर्जनमें ज्ञान और भक्ति प्राप्त करके और ईश्वरका चिन्तन करके साधक भक्तको यह पता चल जाता है कि इस संसारमें अपना कोई नहीं है। केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं और वे ही मेरे सर्वस्व हैं। उन्हें किस तरह मैं पाऊँ, यह अभिलाषा है। यह भावना उस साधक भक्तके हृदयमें जाग्रत् हो जाती है। वैराग्यप्राप्त साधक भक्त संसारमें निर्लिप्त भावसे रहने लगता है।

संसारमें निर्लिप्त होकर रहना तो बहुत कठिन है, परंतु साधक निर्जन स्थानपर रहकर सद्गुरुसे ज्ञान और भक्ति प्राप्त कर सकता है। पाँकाल-मछली (कीचड़में रहनेवाली मछली)-की देहको कीच छू नहीं सकता। इस स्वरूपका ध्यान करके साधक संसारमें निर्लिप्त भावसे रहता हुआ अपनी साधना करता है।

इस बातको इस प्रकार समझो। यह संसार पानीकी तरह है और मनुष्यका मन दूधकी भाँति है। अगर हम पानीमें दूध रखना चाहें तो दूध और पानी एक हो जायँगे। यह सत्य है। दूधसे निर्मित मक्खनको यदि हम पानीमें रखें तो फिर वह पानीमें नहीं मिलता। मक्खन निर्लिप्त स्वरूप है। वह निर्लिप्त होकर पानीमें तैरता रहता है। इसी प्रकार साधक भक्त निर्जन स्थानपर रहकर तथा ज्ञान और भक्ति सद्गुरुओंसे प्राप्त करके संसारमें निर्लिप्त भावसे विचरता है। प्रत्येक साधकको निर्जन स्थानमें वास करते हुए साधना करनी चाहिये। मनको एकाग्र करनेका यही साधन है। इससे परमात्माके संग बने रहनेकी अनुभूति होती है। साधक अपने चित्तको परमात्मामें तथा अपनी आत्मामें स्थिर रखता है ताकि किसी स्थिति तथा परिस्थितिका उसकी साधनापर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े और उसका तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिका लक्ष्य बाधित न हो।

तत्त्व-ज्ञानका अर्थ है—भगवान्के स्वरूपका ज्ञान तथा वह ज्ञान जो अनुकूल और प्रतिकूलको अपने स्वरूपमें समाहित (स्थापित) कर दे। ऐसी ज्ञानकी धारा जो अज्ञानको शुद्ध कर दे, विषको अमृत-तुल्य बना दे, शान्ति और आनन्दका अनुभव करा दे, जीवको प्रभुके स्वरूपमें समाहित कर दे, अपने स्वरूपका ज्ञान करा दे और परमात्मा और जीवका मिलन करा दे। यह तत्त्व-ज्ञानका स्वरूप है। तत्त्व-ज्ञानमें अहं नहीं रहता। तत्त्व-ज्ञान तत्त्वयोगको भी कहते हैं, जिसमें तत्त्वोंका मिलन ईश्वरसे होता है।

भगवान्के स्वरूपके ज्ञानके साथ-साथ आत्म-ज्ञानको भी जानो। आत्मा निष्काम कर्मयोगी है, मर्यादा-पुरुषोत्तम है और सबका कल्याण चाहती है। आत्मा अद्वैत है। आत्मा शरीरमें रहती है, परंतु निर्लिप्त है। आत्मा प्रारब्धके अनुसार शरीरके संग रहती है। जबतक जीवात्मा मुक्त नहीं होती, तबतक जीवात्मा मृत्युके पश्चात् सूक्ष्म वासनाओंके कारण दूसरे कारण शरीरमें आती रहती है।

साधनाका प्रसंग चल रहा है। साधक ध्यान करते-करते ध्येयमें मिल जाता है। उसकी वाणीमें प्रेमरसका प्रकट होना ही साधनाका फल है। चित्तमें विकारोंका मिटना ही उसके ध्येयमें मिलनेके लक्षण हैं।

ज्ञान-वृद्ध (विद्वान्, अनुभवी) सन्तोंको जीवोंके स्वरूपको देखते ही उनकी मनोवृत्तिका ज्ञान हो जाता है, परंतु वे मौन रहते हैं, प्रभु-आज्ञासे ही यथार्थताको प्रकट करते हैं। उन्हें प्रभु-आज्ञामें ही रहना है, इस बातका उन्हें ध्यान रखना होता है। वही साधक इस ज्ञानको अपने भीतर छिपाये रखता है, जो प्रभु-आज्ञामें रहता है। जो साधक इस गुप्त रहस्यको अपनेमें पचा

नहीं पाता, वही कंचन, कामिनी और कीर्तिके बन्धनमें फँस जाता है।

जिस साधककी दृष्टिमें और मनमें भगवान् बसे हैं, वही साधक ब्रह्मचर्यका पालन कर पाता है। ऐसा साधक प्रभुकी शरणमें रहता है। वह किसीसे कुछ कहता नहीं और अपनी मस्तीमें मस्त रहता है। ऐसी अच्छी आध्यात्मिक स्थितिको प्राप्त साधक भगवान्की कृपाका पात्र होता है और उनकी आज्ञामें रहता है।

ऐसे साधककी भगवान् परीक्षा भी लेते हैं। भगवान्को उस साधककी मनोवृतिको जाननेकी इच्छा होती है। उस परीक्षामें कोई तीव्र जिज्ञासु, साधक या कोई अवधूत सन्त ही पूरा उतरता है। उसके पश्चात् ही वे परिपूर्ण स्वरूपको प्राप्त कर पाते हैं और परमात्माके स्वरूपमें समाहित हो जाते हैं।

आओ, अब अवधूत महात्माके स्वरूपको जानो। देखो, यह अवधूत महात्माकी गुफा है। ये अवधूत शंकर-स्वरूप हैं, अपनी मस्तीमें रहते हैं। ये मौन और सत्य-स्वरूप हैं। यहाँ हम अपने हृदयको पवित्र करने आये हैं। भक्तिका रहस्य और महिमा जाननेके लिये, पाप-तापकी निवृत्तिके लिये और अपने जीवनको सुखमय बनानेके लिये हम यहाँ इन अवधूत भगवान्जीकी शरणमें आये हैं। मनका धर्म भी यही है कि वह भगवान्की शरणमें रहे।

ये अवधूतजी महाराज वृक्षके नीचे बैठकर साधना करते रहते हैं, मौन रहते हैं, हृदयमें ही भगवान्की आध्यात्मिक लीलाओंका स्मरण-ध्यान करते रहते हैं और आनन्दमें रहते हैं। भगवान्का सच्चिदानन्द स्वरूप इनके हृदयमें रहता है और भगवान्के स्वरूपके दर्शन इन्हें अपने चितवन (दृष्टि)-में होते रहते हैं। जो साधक निष्कामभावसे इनकी शरणमें रहता है, वह कृतार्थ हो जाता है। ऐसे शरणागत साधककी अहंता-ममता शुद्ध हो जाती है, उसका व्यवहार शुद्ध हो जाता है और उसके आध्यात्मिक जीवनमें सुधार आता है। यह आध्यात्मिक जीवन प्रभु-कृपाका फल है, सद्गुरु-कृपाका फल है तथा इसके लिये आवश्यक है कि साधक, सन्तके मनमें संसारके प्रति वैराग्यका भाव बना रहे।

भक्ति तभी परिपूर्ण होती है, जब भगवान्के स्वरूपका ज्ञान करवानेवाले विद्वान्, विरक्त और त्यागी सद्गुरु मिल जायँ और साधक, भक्तके मनमें भी प्रभु-प्राप्तिकी तीव्र लालसा हो। हम संसारमें रहें, परिवारमें रहें, कर्म करें तथा खेलें-कूदें, परंतु अपने कल्याण करनेके लक्ष्यपर दृष्टि बनी रहे। आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेके लिये सद्गुरुओंके, विरक्त सन्तोंके एवं अवधूत महात्माओंके आशीर्वादको प्राप्त करना जरूरी है। वे भगवद्-स्वरूप हैं, ऐसा शुद्ध मनमें विश्वास बन गया तो श्रद्धालुजनका बेड़ा पार है। जिसके हृदयमें भगवान्के पवित्र नामका स्मरण बना रहता हो और मनमें प्रभुके स्वरूपका ध्यान हो तो साधक, भक्त और भगवान्के बीचमें किसी सेतुकी जरूरत नहीं पड़ती। साधक, भक्त भगवान्के श्रीचरणोंकी शरणागतिमें रहता है। यही है आध्यात्मिक लीलाका रहस्य।

यही सत्य है। भगवद्-लीलाके दर्शन और इस आध्यात्मिक स्वरूपको हमें अपने हृदयमें धारण करना है, जिससे भक्ति स्थिर रह सके और हम प्रभुके नामरूपी अमृतरसका पान करते रहें।

[प्रेषक—स्वामी श्रीआनन्दस्वरूपजी]

अमृत-कण

'जीवनका कोई-भरोसा नहीं, कमलदलपर जैसे जल स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही यह जीवन है। इसमें अल्पकालके लिये जो सत्पुरुषोंका संग प्राप्त होता है, वही संसाररूपी समुद्रको तरनेके लिये नौकाका काम देता है।'

'धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, शान्ति पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया बहन है, मन-संगम भ्राता है, पृथ्वी शय्या है, दिशाएँ वस्त्र हैं, ज्ञानामृत भोजन है—इतने जिसके कुटुम्बी हैं, बताइये, ऐसे योगीको किसका भय है।'

साधकोंके प्रति—

[सभी परमात्मप्राप्ति कर सकते हैं]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक ऐसी बात है, जिसकी महिमा मैं कह नहीं सकता। अगर आप ध्यान दें तो सदाके लिये निहाल हो जायँ। वह यह है—ऐसा कोई पारमार्थिक साधन है ही नहीं, जिसके लिये हम कह सकें कि इसको तो हम नहीं कर सकते, और ऐसा कोई सांसारिक कार्य नहीं है, जिसको सब कर सकते हों। कारण कि परमात्मप्राप्तिकी योग्यता, सामर्थ्य तो सभी मनुष्योंमें नहीं है। जैसे कामनाकी पूर्ति करना और कामनाका त्याग करना—ये दो बातें हैं। कामनाकी पूर्ति कभी कोई कर ही नहीं सकता। हम इन्द्र बन जायँ, महाराजा बन जायँ, बड़े धनी बन जायँ, कितनी ही सम्पत्ति इकट्ठी कर लें, तो भी कामनाकी पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती, परंतु कामनाका त्याग हो सकता है। सांसारिक पूर्ति कोई कभी कर ही नहीं सकता और परमात्माकी प्राप्ति सभी कर सकते हैं। इसमें कोई अयोग्य है ही नहीं; क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है। जिस कामके लिये शरीर मिला है, वही काम यदि नहीं कर सकता तो फिर क्या कर सकेगा वह? सांसारिक पूर्तिके लिये शरीर मिला ही नहीं है तो फिर उसकी पूर्ति कैसे कर सकता है? कर ही नहीं सकता।

परमात्माकी प्राप्ति करनेमें, सांसारिक कामनाका त्याग करनेमें सब-के-सब स्वाधीन हैं और सांसारिक कामनाकी पूर्ति करनेमें सब-के-सब पराधीन हैं। सांसारिक कामना पूरी करनेमें कभी कोई समर्थ है ही नहीं, परंतु कामनाका त्याग करनेमें, परमात्माकी प्राप्ति करनेमें सब-के-सब समर्थ हैं, कोई असमर्थ नहीं है। सब-के-सब पात्र हैं, कोई अपात्र नहीं है; सब-के-सब योग्य हैं, कोई अयोग्य नहीं है। सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति दो मनुष्योंको भी कभी एक समान नहीं होती, पर परमात्माकी प्राप्ति सबको एक समान होती है। पहले नारद, व्यास, शुकदेव आदि महात्माओंको जिस तत्त्वकी प्राप्ति हुई है, उसी तत्त्वकी प्राप्ति आज भी कोई करना चाहे तो कर सकता है। ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो; ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो अथवा संन्यासी हो; बीमार हो अथवा स्वस्थ हो; अनपढ़ हो अथवा पढ़ा-लिखा हो; निर्धन हो अथवा धनवान् हो—सब-के-सब परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हैं। इसमें आप खूब शंका करें; शंका टिकेगी नहीं! सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है; क्योंकि उनकी प्राप्ति दूसरोंके अधीन है। दूसरेकी अधीनता स्वीकार किये बिना, दूसरेकी सहायता लिये बिना अकेला कोई सांसारिक भोगोंको भोग ही नहीं सकता, परंतु परमात्माकी प्राप्ति अकेला ही कर सकता है, क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिमें किसीकी सहायताकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं।

पारमार्थिक बात बतानेवाले भी हर समय तैयार हैं। दत्तात्रेयजी महाराजने चौबीस गुरु बनाये तो पारमार्थिक बात बतानेवालोंको ही गुरु बनाया, नहीं बतानेवालोंको वे गुरु कैसे बनाते? गुरुका कभी अभाव होता ही नहीं।

बालकपनमें खिलौनोंकी कामना होती है, पर आज खिलौनोंकी कामना होती है क्या? इससे सिद्ध हुआ कि कामना छूटती है। यह आपके अनुभवकी बात है। सांसारिक कामना टिक नहीं सकती। एक कामना छूटती है तो आप दूसरी कामना पकड़ लेते हैं। इस तरह आप नयी-नयी कामना पकड़ते रहते हैं। अगर पकड़ना छोड़ दें तो निहाल हो जायँ। परमात्मप्राप्तिकी कामना तो कभी किसीकी नहीं मिटती, केवल दब जाती है। जो कामना टिकती नहीं, उसको तो पकड़ते रहते हैं और जो कामना मिटती नहीं, उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते—यह हमारी वस्तुस्थिति है। परमात्मप्राप्तिकी कामना पूरी करनेमें आप सब सबल हैं, निर्बल नहीं हैं, परंतु सांसारिक कामना पूरी करनेमें आप सब निर्बल हैं, कोई सबल नहीं।

श्रोता—संसारकी इच्छा और परमात्माकी इच्छा—दोनों बिलकुल विपरीत होते हुए भी एक ही जगह रहती हैं क्या?

स्वामीजी—दोनों इच्छाएँ एक ही जगह होती हैं। जहाँ भोगकी इच्छा है, वहीं मोक्षकी इच्छा है। भोगकी इच्छा निवृत्त होगी और परमात्माकी इच्छा जाग्रत् हो जायगी। संसारकी इच्छाको मिटा दो तो परमात्माकी इच्छा आप-से-आप पूरी हो जायगी। संसारकी इच्छा कभी पूरी नहीं होगी। लाखों, करोड़ों, अरबों जन्म हो जायँगे तो भी पूरी नहीं होगी, प्रत्युत नयी-नयी पैदा होती रहेगी—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।'***

श्रोता—दोनों विपरीत इच्छाएँ एक ही जगह कैसे रहती हैं?

स्वामीजी—एक इच्छाको तो आपने पकड़ा और एक इच्छा आपमें स्वत: है। संसारकी इच्छाको तो आपने पकड़ा है और परमात्माकी इच्छा आपमें खुदमें है। मैं सदा जीता रहूँ, मेरेमें और कोई अज्ञान न रहे, मैं सदा सुखी रहूँ—यह आपकी खुदकी इच्छा है। भोगोंकी इच्छा आपकी खुदकी नहीं है।

इच्छाके प्रेरक आप खुद ही हैं। अगर आप खुद सांसारिक इच्छाको छोड़ दें तो वह टिक सकती ही नहीं। जिसकी पूर्ति होनी असम्भव है, उसको तो छोड़ ही देना चाहिये। सांसारिक इच्छा इसलिये पूरी नहीं होती कि संसार 'नहीं' है और परमात्मप्राप्तिकी इच्छा इसलिये पूरी होती है कि परमात्मा 'है'। सांसारिक वस्तुएँ कभी सदा नहीं रहतीं, मिट जाती हैं, पर परमात्मा सदा ही रहते हैं।

श्रोता—संसारमें रहकर संसारकी इच्छासे अलग कैसे रह सकते हैं?

स्वामीजी—संसारमें रहकर भी सब तरहकी इच्छा होती है क्या? नहीं हो सकती। बनावटी इच्छा सब तरहकी कैसे हो सकती है? भोजनमें भी दो आदमियोंकी एक इच्छा नहीं होती। किसीको मीठा अच्छा लगता है, किसीको मिर्च अच्छी लगती है। किसीको थोड़ी मिर्च अच्छी लगती है, किसीको ज्यादा मिर्च अच्छी लगती है। इस तरह संसारकी सब इच्छाएँ सबको नहीं होतीं। अत: संसारकी इच्छा छूटनेवाली है। जैसे संसारकी दूसरी इच्छाओंसे आप अलग रहते हैं, ऐसे ही जिन इच्छाओंको आपने पकड़ रखा है, उन इच्छाओंसे भी आप अलग रह सकते हैं।

वास्तवमें आप स्वयं संसारमें रहते ही नहीं, प्रत्युत परमात्मामें ही रहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७)। संसारमें तो शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि रहते हैं—'**मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि**' (गीता १५।७)। जो आपके नहीं हैं, उन शरीरादिको तो आप अपना मान लेते हैं और जो आपके अपने हैं, उन परमात्माको आप अपना नहीं मानते—यह खास भूल है।

श्रोता—परमात्माको देखे बिना अपना कैसे मानें?

स्वामीजी—आप स्वयं दीखते हो क्या? आप कहते हैं कि शरीर मेरा है, इन्द्रियाँ मेरी हैं, मन मेरा है, बुद्धि मेरी है, तो इससे सिद्ध होता है कि आप शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसे अलग हैं। अत: आप कैसे हैं? आपका रंग-रूप कैसा है? बताओ। आप स्वयं नहीं दीखते, फिर भी अपनेको मानते हो कि नहीं? अभी तो बात चल रही है, उसकी तरफ आप ध्यान तो दो, जिस इच्छाकी पूर्ति नहीं हो सकती, उसको तो छोड़ दो और जिस इच्छाकी पूर्ति हो सकती है, उसको पकड़ लो—इतनी ही तो बात है। सिद्धान्तकी एकदम पक्की बात है। '**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।**' (गीता ६।२२)

—जिसकी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई लाभ है ही नहीं और दु:ख जिसके नजदीक ही नहीं पहुँचता, उसकी प्राप्ति आप सबको हो सकती है; परंतु यह तब होगी, जब आप दूसरी (सांसारिक) इच्छा नहीं रखोगे। अगर परमात्माकी इच्छा भी रहेगी और संसारकी इच्छा भी रहेगी, तो काम नहीं बनेगा—***'दुबिधामें दोनों गये, माया मिली न राम।'***

श्रोता—भगवान् सांसारिक कामना पैदा कर देते हैं!

स्वामीजी—भगवान् कभी किसीकी कामना पैदा नहीं करते, नहीं करते, नहीं करते! कामना तो आपकी अपनी बनायी हुई है। आप सच्चे हृदयसे प्रार्थना करो तो भगवान् मिटा देंगे। जिससे आपपर आफत आये, ऐसा काम भगवान् नहीं करते; क्योंकि आप भगवान्‌के अंश हैं। अंशी अपने अंशका बिगाड़ कैसे कर सकता है?

खेलत स्यामा-स्याम ललित ब्रजमें रस-होरी

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

ब्रजमण्डलका सबसे निराला और अनूठा महोत्सव है होली, जिसकी मादकता बसन्त पंचमीसे सारे प्रदेशमें छा जाती है। फागुनका महीना है भी ऐसा ही, जब गोप-गोपियोंके रोम-रोममें मस्ती अपना रंग दिखाने लगती है। घर-घरमें साखाचार होता है, कहीं ब्रज-ललनाएँ पैरोंमें घुँघरू बाँध थिरकती दिखायी देने लगती हैं। कहीं-कहीं ग्वाल-बाल ब्रजकी वीथियोंमें ब्रजललनाओंके संग नाचते-गाते दृष्टिगोचर होते हैं। बसन्तके आगमनके साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके संग सर्वत्र होली खेलते देखे जा सकते हैं। कान्हा जब होली खेलते हैं, सारा आकाशमण्डल गुलालके रंगोंसे ढक जाता है और धरतीमाता श्रीवृषभानुनन्दिनी राधारानीकी पिचकारीसे छूटे सतरंगी रंगोंसे अपना शृंगार करती हैं। इन्हीं पलोंकी प्रतीक्षा करते-करते एक दिन ललिता सखीने श्रीराधारानीको संकेतकर कहा—हे प्रियाजी!

तैरें आवैंगे आजु सखी हरि खेलन को फाग री।
सगुन संदेसौं हौं सुन्यौ तेरे आँगन बोलै काग री॥
मदन मोहन तैरे बस माइ, सुनि राधे बड़भाग री।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ का सोवै उठि जाग री॥
चोबा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ राधा अचल सुहाग री॥

फागुनका वह मस्त महीना जिसकी हर तरुणीको प्रतीक्षा रहती है, अन्ततः आ ही गया। हे राधेरानी! तुम्हारे आँगनमें कागकी वाणी सुनायी दे रही है, यह इस बातका शुभ संकेत है कि कान्हा आज होली खेलने तुम्हारे द्वारपर आयेंगे।

उधर श्रीकृष्ण अपने बाल सखाओंके संग होली खेलने बरसानाकी ओर चल पड़े। इधर श्रीराधारानीको जब उनके आगमनका सन्देश मिला तो वे अपनी सखियोंके संग उनके स्वागतके लिये रँगीली गलीमें पहुँच गयीं। वहाँ श्रीकृष्णसे भेंट होते ही होलीका पारम्परिक खेल प्रारम्भ हो गया—

हरि संग खेलत हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी उर अन्तर कौ अनुराग॥
सारी पहिरि सुरंग कसि कंचुकी काजर दै दै नैन।
बनि बनि निकसी निकसि भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥

दोनों पक्ष अपनी पूरी तैयारीके साथ आये थे। पिचकारीके रंग और गुलालका भरपूर भंडार था। समस्त ब्रजबालाएँ मिलकर मनमोहनके संग होली खेलने लगीं। इसी खेलके माध्यमसे गोपियाँ अपने हृदयमें छिपाये श्रीकृष्णके प्रति प्रेमका प्रदर्शन करने लगीं। तनपर रंग-बिरंगी साड़ियाँ धारण किये और आँखोंमें काजल लगाये गोपियाँ आयी हैं। अब होरी खेलनेका कार्यक्रम पूरे यौवनपर प्रारम्भ हो गया—

डफ बाँसुरी रुज अरु महुअरी बाजत ताल मृदंग।
अति आनन्द मनोहर बानी गावति उठति तरंग॥
एक कोध गोविन्द ग्वाल सब एक कोध ब्रजनारी।
छाँड़ि सकुच सब देति परस्पर अपनी भाई गारी॥
मिलि दस पाँच अली चली कृष्नहि गहि लावति अचकाई।
भरी अरगजा अबीर कनक घट देति सीस तैं नाई॥
छिरकति सखी कुमकुम केसरि भुरकति वंदन धूरि।
सोभित है तनु साँझ समै-घन आए हैं मनु पूरि॥
दसौ दिसा भयौ परिपूरन सूर सुरंग प्रमोद।
सुर विमान कौतूहल भूले निरखत स्याम विनोद॥

अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंके साथ नाचते-गाते सखा और सखियाँ श्रीकृष्णके संग आनन्द और उल्लासकी रसधारासे सिंचित हो रहे हैं। होलीके इस पर्वका विस्तारसे वर्णन करते हुए श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने लिखा है—

खेलत स्यामा-स्याम ललित ब्रज में रस-होरी।
राधा-संग सखी-सहचरि सब मिलि केसर-रँग-घोरी॥
सुन्दर स्याम-बदन पर डारत भरि-भरि कनक-कटोरी।
प्रेम-रस-रंग-बिभोरी॥
हेरि-हेरि हरि-मुख पिचकारी छाँड़ि रहीं चहुँ ओरी।
पकरि हाथ सखियन मलि, दीन्हीं मुँह गुलाल अरु रोरी॥
स्याम-मुख अरुन भयौ री॥

ब्रजमें श्रीराधाकृष्ण होलीके मधुर रंगोंमें भीग रहे हैं। श्रीराधारानीने अपनी सखी-सहेलियोंकी सहायतासे केसरका रंग घोल सुगन्धित जल तैयार किया है। वे

सब मिलकर उस जलसे श्यामसुन्दरके शरीरको भिगोने लगी हैं। बार-बार उनके मुखको केन्द्रितकर अपनी पिचकारीसे केसरिया रंग मार रही हैं। अब उन सखियोंने मिलकर श्रीकृष्णको घेरकर उनके मुखपर गुलाल मल दिया है—

देखि प्रसन्न सखियन सँग रंगिनि नवल किसोरी।
उमग्यौ हिय आनंद सिंधु हरि रँग दीन्ही सब गोरी॥
सुरस-संग्राम मच्यौ री॥

श्रीकृष्णने श्रीराधारानी और उनकी सखियोंको प्रसन्न जान अपने प्रेमरंगमें रँग दिया। रंग और गुलालके साथ प्रियाजी और कान्हाजीकी टोलियोंके बीच मचे घमासानके कारण—

भूमि लाल, नभ-लाल, ललित रँग सब दिसि लाल छयौ री।
लाल लता-तरु, लाल-सुमन-फल, निधुबन लाल भयौ री॥
मोर-चकोर लाल भए, अलि-कुल रंग गुलाल लह्यौ री।
लाल निकुंज लाल सुक-कोकिल, लाल रसाल बन्यौ री॥
लाल दिवस-निसि, लाल सूर्य-ससि, लाल छितिज सु छयौ री।
लाल सलिल कालिंदी सोभित, लाल बयार बह्यौ री॥
ललना-लाल लाल भए दोऊ सखी लाल रँग बोरी।
नील-पीत पट, चुनरी-पगरी—सबै लाल रँग घोरी॥
सकल जग लाल भयौ री॥

—पृथ्वी और आकाश, लता-पता और वृक्षावलियाँ, फूल और फल, पशु और पक्षी, कीट-पतंग और भ्रमरोंके समूह, कुंज और निकुंज, रात और दिन, सूर्य-चन्द्रमा, वायु और कालिन्दीकी जलधारा भी लाल हो गयी। प्रिया-प्रियतम और उनकी सखियाँ, गोपोंकी पगड़ी और ब्रजबालाओंकी चुनरी सब लाल हो गये।

इस लीलाका वर्णन करते हुए रसखानजीने लिखा है—

खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहिं लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रँग कों भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमस्त मनों मन कों हरि कै॥
मिलि खेलत फाग बढ़्यौ अनुराग सुराग सनी सुख की रमकैं।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दृग लावन कौं धमकैं॥
रसखानि गुलाल की धूँधर में ब्रजबालन की दुति यौं दमकैं।
मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि तें चपला चमकैं॥

होलीके इस मादक पर्वपर श्रीराधारानी और उनकी सखियाँ श्रीकृष्ण-प्रेमको हृदयमें धारणकर कुमकुम केसरयुक्त रंग अपनी पिचकारीमें भरकर मोहनको नख-शिख भिगो रही हैं। इधर गुलालकी धुआँधार वर्षासे ब्रजबालाओंका सौन्दर्य ऐसे चमक उठा, मानो वर्षा-ऋतुमें बादलोंकी लालिमामें बिजली चमक रही हो! होलीके रंगोंसे सराबोर हो और प्रियाजीकी पिचकारीसे निकली फुहारोंके सामने कान्हाने आत्मसमर्पण कर दिया। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने इस लीलाका सरस वर्णन करते हुए पद-रत्नाकरमें लिखा है—

होरी में गए हार सकल खल-दल-संहारी।
सखी-सहचरी सब कौं लै सँग, भरी रस-रँग पिचकारी॥
मधुर बदन, कोमल सब तन पर हेरि-हेरि कै मारी।
रँगीली कीर्ति-कुमारी॥
लाल कपोल गुलाल लपेटे, दृग सुरभित जल डारी।
भाजि चले मन-मोहन सोहन पौंछत नयननि बारी॥
हँसी सखि दै कर-तारी॥
मुरली कर सौं परी धरनि पर, मोर-सिखा महि डारी।
भए स्त्रमित, मृदु चरन डगमगे, बैठि गए मन मारी॥
घेरि लिए सखिन मुरारी॥

इस सुअवसरका सदुपयोग करते हुए श्रीराधारानीने कान्हाके कोमल तनपर अपनी रंग-भरी पिचकारीसे रंगकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। गालोंपर लाल गुलाल और शेष तनको सुगन्धित जलसे सराबोर कर दिया। इस दशामें अपने नयनोंको पोंछते हुए मनमोहनको भागते देख सखियाँ ताली बजा-बजाकर हँसने लगीं। सहसा ही भागते समय कन्हैयाकी वंशी और शीशके मयूर-पंख धरतीपर गिर पड़े। चलते-चलते उन्होंने विश्रामकी दृष्टिसे बैठनेका निर्णय लिया। सुअवसर जानकर सखियोंने वहीं जा घेरा और,

मोहन छबीले को पकरि लीन्हों होरी माहिं,
मोर को पखौआ छीन सारी सीस धारी है।
खञ्जन से नैनन में अञ्जन लगाय दीन्हो,
दोनों मुख पान भाल बेंदी दई कारी है॥
लाल बलवीर प्यारी प्रीतम बनाय दीन्हौ,
रंग की कमोरी सीस ऊपर सौं ढ़ारी है।

हँसे बूझे नारी बोली भानु की दुलारी प्यारी,
आई मथुरा तें एक गोप की कुमारी है॥

सबने मिलकर कान्हाको दबोच लिया। अब वे कान्हाको नरसे नारी बनानेमें लगी हैं। उनके तनपर लिपटा पीताम्बर छीन साड़ी धारण करा दी। मतवारे नयनोंमें कजरा लगा दिया, मुखमें पानका बीड़ा और माथेपर बिन्दिया सजा दी। प्यारे मनमोहनको सर्व प्रकारसे प्रियाजीका वेष धारण करा, शीशपर केसरका रंग उड़ेल दिया। प्रियाजी प्रसन्न होकर अपनी सखियोंसे कहने लगी—देखो, यह गोपकन्या मथुरासे आयी है, कितनी प्यारी लग रही है।

इतनेपर भी जब वे सखियाँ सन्तुष्ट नहीं हुईं, तब कान्हाको घेरकर एक गोपीके आँगनमें ले जाकर उनसे छेड़छाड़ प्रारम्भ कर दी। किन्हींने दुलारा, किसीने पुचकारा, कोई गालोंपर चिकोटी काटने लगी, कोई उनके मुखको चूमने लगी, कोई उनके घुँघराले बालोंको सहलाकर आनन्दित हो रही थी। एक सखीने तो उनकी आँखोंका कजरा छुटाकर अपनी आँखोंमें लगा लिया। श्रीराधारानी भी इस होलीके आनन्दको जी भरकर भोगना चाहती हैं।

इस लीलाका सरस चित्रण करते हुए पद्माकरजीने लिखा है—

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाँय करी मन की पदमाकर ऊपर नांई अबीर की झोरी॥
छीनी पीताम्बर कम्मर से सुविदा दई मीड़ी कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर अइयो खेलन होरी॥

विएतनाममें शिवाजी महाराजकी प्रेरणा

(श्रीकैलाशजी बंसल)

विएतनाम—इस छोटे-से देशने अमेरिका-जैसे शक्तिशाली देशको धूल चटायी थी। लगभग २० वर्ष चले इस युद्धमें अमेरिका परास्त हुआ था। विजयके बाद विएतनामके राष्ट्राध्यक्षसे पत्रकारोंने प्रश्न पूछा कि अमेरिकाको कैसे हरा पाये? युद्ध कैसे जीता? इसपर उन्होंने उत्तर दिया, 'वास्तवमें अमेरिका-जैसी महाशक्तिको हराना असम्भव है, लेकिन उसी महाशक्तिसे जूझनेके लिये मैंने एक महान् राजाका चरित्र पढ़ा। उससे मिली प्रेरणासे मैंने युद्धनीति बनायी, उसीको लागू किया और आसानीसे विजय पायी।'

आगे पत्रकारोंने पूछा, कौन था वह महान् राजा? मित्रो! मैंने जब इसका उत्तर पढ़ा तो मेरा सीना गर्वसे चौड़ा हो गया, जैसा अब आपका भी होगा… तो इस प्रश्नपर विएतनामके राष्ट्राध्यक्ष अपने स्थानपर खड़े हुए और उन्होंने आदरसे कहा, 'छत्रपति शिवाजी महाराज।' आगे उन्होंने कहा कि 'यदि ऐसा राजा हमारे देशमें पैदा होता तो आज हम पूरी दुनियापर राज करते।'

कुछ वर्षों बाद विएतनामके उन राष्ट्राध्यक्ष महोदयकी मृत्यु हुई। उन्होंने अपनी समाधिपर जो वाक्य लिखनेके लिये कहे, वे थे—'शिवाजी महाराजका एक सैनिक समाधिस्थ हुआ।' ये वाक्य हम आज भी इनकी समाधिपर देख सकते हैं।

कुछ वर्षोंके बाद विएतनामकी विदेशमन्त्रीका भारतका दौरा हुआ। तय राजकीय कार्यक्रमके अनुसार उन्हें लालकिला और गाँधीजीकी समाधि दिखायी गयी, लेकिन ये दिखाते समय उन्होंने पूछा—'शिवाजी महाराजकी समाधि कहाँ है?' तब भारतसरकार सन्न रह गयी और उत्तर दिया गया—'रायगढ़।' विएतनामकी विदेशमन्त्री रायगढ़ पहुँचीं और शिवाजी महाराजकी समाधिका दर्शन किया। उसके बाद उन्होंने रायगढ़की मिट्टी उठायी और अपने बैगमें डाल ली। इसका कारण पत्रकारोंद्वारा पूछे जानेपर मन्त्री महोदयाने कहा कि यह मिट्टी शूर-वीरोंकी है। इसी मिट्टीमें शिवाजी-जैसे महान् चरित्रवान् राजाका जन्म हुआ है। अपने देश वापस जाकर यह मिट्टी मैं अपने देशकी मिट्टीमें मिलाऊँगी, जिससे हमारे देशमें भी ऐसे ही शूर-वीर पैदा हों।

[प्रेषक—श्रीसुरेन्द्रकुमारजी गोयल]

वेदोंके अनुसार ब्रह्माण्डका दिव्य अप्—गंगा

(श्रीरामजी शास्त्री)

'सर्वमापोमयं जगत्' यानी ब्रह्माण्डमें अप् (अम्भः)-दिव्यजल व्याप्त है। वेदमें गंगाशब्द मात्र दो बार उपयोगमें आया है। स्मृति एवं इतिहासमें सुमेरु पर्वतके ऊपर दिव्यनदी गंगाके जलप्रवाहका उल्लेख है।

श्रुति-स्मृतिके अनुसार आकाशमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और अनेक सूर्य हैं। ऋग्वेद (१।१०५।१)-में कहा है—**'चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि'**—चन्द्रमा अप्के अन्दर दौड़ रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थोंसे लेकर उपनिषद्, स्मृति, पुराणमें समूची सृष्टिकी उत्पत्ति अप् या जलसे स्वीकारी गयी, किंतु अप्का सामान्य वैदिक अर्थ जल लेना सही नहीं है। वेदोंके सूक्तोंका गूढ़ रहस्य प्रतीकात्मक, कूट शब्दोंमें है। उदाहरणके लिये वेदमें गौ शब्द सूर्यकी रश्मियों, वाक्, प्रजनन, मातृत्व आदिके रूपमें प्रयुक्त है। वेदका अम्भ, अप् रसरूप द्रव है। अतः अम्भः या अप् ब्रह्माण्डका दिव्य जल है। ऋग्वेद (१।२३।१७)-में ही उल्लेख है—**'अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥'** इसका अर्थ है कि सूर्यके नजदीक अप् विद्यमान है। अथर्ववेद कहता है कि अग्नि और सूर्य अप्में ही उत्पन्न हुए—**'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।'** (१।३३।१) वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे जलकी रचना हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजनके योगसे हुई। सूर्यमें बाहर हाइड्रोजन एवं अन्दर हीलियमका दहन हो रहा है। स्पष्ट है कि हाइड्रोजन अग्नि और जल दोनोंके लिये काम आती है।

भगवान् सूर्यके उदय होने और अस्त होनेपर अप्की स्थितिमें परिवर्तन होता है। स्मरण रहे कि देववाणी वेद श्रुतिका साक्षात्कार करनेवाले ऋषियोंने दावा किया कि उन्होंने सूर्यका चक्कर लगाया और अन्दर दहनशील धूम्रको देखा (वैज्ञानिक अभी सूर्यदेवकी परिक्रमा लगानेमें सफल नहीं हो पा रहे हैं। वैदिक देवताओंके शरीर-विज्ञानमें सूर्यको स्नायुतन्त्र माना गया है।) अथर्ववेदके मन्त्रमें तीन प्रकारके जलकी घोषणा की गयी है—**'या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्। तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा॥'** (४।८।५) इस प्रकार तीन अप् हैं—दिव्य अप्, अन्तरिक्ष अप् और पृथ्वी या भूमि अप्। दिव्य अप् सूर्यलोक द्युलोकका है। आनुष्ठानिक मन्त्र भी है—**'ॐ या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।'** हम दिव्य अप् जलको सभी रसोंमें शामिल स्वीकारते हैं।

उस दिव्य जल—सूर्यलोक या द्युलोकके जल और अन्तरिक्ष जलके बारेमें पश्चिमी जगत्ने भ्रान्ति फैलायी। द्युलोक और अनेक सूर्योंकी वैदिक अवधारणाको पश्चिमने लगातार नकारा, प्रकारान्तरसे स्वीकार किया। वैदिक विज्ञानके अनुसार सूर्योदयके समय सूर्यकी किरणोंके तेजके कारण ब्रह्माण्डका अप् अपनी जगहसे हटनेको विवश होता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि आकाशमें ब्रह्माण्डोंकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। इस सीमापर एक सूर्यकी किरणोंका तेज खत्म होता है और दूसरे सूर्यका शुरू होता है। इस सीमान्तपर सूर्यकी शक्ति एवं तेज बहुत ही क्षीण कमजोर होता है। यहाँ अप् एकत्र होने लगता है। यह ब्रह्माण्डका दिव्य जल—दिव्य अप् है। हमारी पृथ्वीपर भी ध्रुवक्षेत्रमें अप् घनीभूत होकर हिमका स्वरूप लेता है। स्मृतियोंमें रचयिताओंने सृष्टिको गोपनीय रखते हुए 'ब्रह्माण्डकी गंगा' का रहस्योद्घाटन किया। इसीसे प्रेरित होकर 'आकाशगंगा' का उद्घोष हुआ।

वैज्ञानिक रूपसे देखें तो अन्तरिक्षमें एकत्र जल अपने भारसे नीचे पृथ्वीकी ओर आया। 'यह सूर्य-लोकका दिव्यजल पवित्र, दिव्यपर्वत सुमेरुपर प्रवाहित हुआ।' यही 'गंगा' कहलाया। इसे वामन-अवतार, वराह-अवतार आदिकी कथाओंमें पिरोया गया। यह समझना आवश्यक है कि सूर्यके सहस्त्रनामोंमें विष्णु एवं

वराह भी हैं। श्रीरुद्रका एक नाम दिवोवराह है। वेदके दिव्यद्रष्टा ऋषियोंने गंगाके भीतरसे अदृश्य दिव्यगुणोंको उद्‌घाटित किया (यद्यपि सांकेतिक प्रतीकात्मक कूटरूपमें ही)। उन्होंने गंगाके द्युलोकसे सम्बन्धोंकी बारीकियोंको जाना—‘**इदमापः प्र वहत यत्किञ्च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्॥**’ (ऋग्वेद १।२३।२२)

जगत्‌की आत्मा सूर्य सवितादेवकी किरणोंमें अप्‌की उपस्थितिका रहस्य ऐतरेय ब्राह्मणमें ‘मारीचि’ शब्दसे किया। स्पष्ट है कि वेदमें अप्‌का एक रूप मारीचि कहा गया। वैदिक ऋषियोंकी स्पष्ट मान्यता थी कि यह समूचे ब्रह्माण्डोंमें फैला हुआ है (चाहे धूम्र—गैसरूपमें ही हो)। यही कारण है कि वेदके ऋषि दिव्यजलवाली पवित्र नदियोंकी स्तुति करते हैं—‘**इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥**’ (ऋग्वेद १०।७५।५) यह आकाशीय अप् या श्रीजल रोग, शोक, ताप, और मन-कर्म-वचनके पापोंको हरनेवाला है। सूर्यलोकसे आया जल पृथ्वीपर दिव्य चमत्कारी ओषधीय शक्तियोंसे सम्पन्न है। इसकी दिव्यता ही इसे वर्षोंतक सड़ने नहीं देती है। काकभुशुण्डि और वाल्मीकिने गंगाकी दिव्यताका गान किया। कथानकोंमें स्वर्गलोकसे सदाशिवकी जटाओं एवं सुमेरुपर्वतकी चट्टानोंसे टकराती गंगाका भव्य वर्णन वाल्मीकिने किया—‘**ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लि-मुल्लासयन्ती स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्ड-शैलात्स्खलन्ती।**’ अन्तरिक्षमें ही सूर्यकिरणोंसे दिव्यनदी यमुनाकी उत्पत्ति कही गयी। यमुनाको सूर्यदेवकी तनया (सुपुत्री)-के नामसे अभिहित किया गया।

स्मृतिग्रन्थोंके अनुसार हजारों वर्ष दिव्य अप् धूम्र अथवा दूसरे रूपमें आकाशमें मौजूद रहा। उसके बाद ही अप् जल द्रवके रूपमें आया। श्रीविष्णुपुराणमें गंगाके वामनके पैरसे निकलनेका आख्यान है। वामनावतारकी कथाके मर्ममें जानेसे नये रहस्य उद्‌घाटित होते हैं। वामनभगवान्‌के

पदसे ब्रह्माण्डका सीमान्तक्षेत्र टूटा। इस सीमान्तक्षेत्रसे घनीभूत अप् दिव्य जलधारा बह निकली। यही सुमेरुपर्वतपर बह चली। आध्यात्मिक भाषामें विष्णुका पैर ‘सप्तऋषि प्रदेश’ है। सदाशिवका एक नाम व्योमकेश है। महाभारतके भीष्मपर्व (६।३०-३१)-में जम्बूखण्ड-निर्माणपर्वमें वर्णन मिलता है—‘**तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि॥ शतं वर्षसहस्त्राणां शिरसैव पिनाकधृक्।**’ अर्थात् जिन्हें अपने ऊपर धारण करना पर्वतोंके लिये भी कठिन था, उन्हीं गंगाको पिनाकधारी भगवान् शिव एक लाख वर्षोंतक अपने मस्तकपर ही धारण किये रहे। श्रीमद्भागवतमें भी गंगाके विष्णुके वामपदसे प्रवाहित होनेका ब्योरा है। मन्त्रोंमें उल्लेख है—‘**अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्त-र्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥**’ (ऋग्वेद १।२३।२०) मन्त्र बताता है कि अप्‌में विद्यमान सोममें सभी ओषधियाँ हैं। साथ ही अप्‌में अग्नि है। स्वाभाविक रूपसे अप्‌में सोम और अग्नि दो तत्त्व हैं। ब्रह्माण्डके दिव्यजलमें आधिदैविक शक्तिवाला सोम और दिव्यशक्ति-सम्पन्न अग्नि है। यह दिव्यजल सूर्यलोकके अलावा महर्लोक और जनलोकमें भी उपलब्ध है। सारसंक्षेपमें वैदिक ग्रन्थोंमें वर्णित दिव्यजल गंगाके रूपमें है और वह कल्याणपरक है।

गंगा, कर्णवास तथा काका हाथरसी

(श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)

पद्मश्री काका हाथरसीसे हास्य-सम्राट्के रूपमें लगभग सभी हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्ति परिचित होंगे, किंतु गंगाके प्रति उनकी निष्ठा कितनी गहन थी, इससे कदाचित् अधिक व्यक्ति अवगत नहीं होंगे।

काकाजीके अनुसार गंगाके पवित्र जलमें एक विशेष प्रकारका गुण एवं आकर्षण है, जो हमारे तन-मनको मोह लेता है। कहते हैं गंगाजलमें ऐसा औषधीय गुण है, जो हर प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखता है। हमारे देशमें गंगा प्राणवाहिनी हैं। जन-जीवनमें गंगाके प्रति जो अटूट आस्था विद्यमान है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही होगी।

गंगाके प्रति ऐसी निष्ठा काकाजीमें मात्र वैचारिक स्तरपर ही नहीं थी, अपितु वास्तविक जीवनमें भी उनकी गंगाभक्तिका जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह नितान्त अनुपम है। इसका श्रीगणेश मात्र छः वर्षकी अवस्थामें ही हो गया था, जब उन्होंने सोरों (शूकर-क्षेत्र)-में पहली बार गंगादर्शन तथा स्नानका पुण्यलाभ किया। इस प्रसंगका रोचक वर्णन उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत है—

'सन् १९१२ ई० में मैं दाऊजी (बलदेव, जो मथुरा जिलामें स्थित है)-में अपने मौसाके घर अपनी माताजीके साथ गरीबीके दिन काट रहा था। दाऊजीसे सोरों गंगा-स्नानके लिये मोहल्लेकी महिलाओंने योजना बनायी। लगभग तीस नर-नारी और बच्चे एक ऊँट-गाड़ीमें ठूँस दिये गये। उनमें अपनी अम्माके साथ मैं भी था। पूरी ऊँटगाड़ी जो कि दो-मंजिली थी, आवागमनसहित तीस रुपयेमें तय हुई। बड़ोंसे दो-दो रुपये और बच्चोंसे एक-एक रुपया!'

रात्रिके आठ बजे यह ऊँटगाड़ी बलदेवसे सोरोंके लिये रवाना हुई। दूसरे दिन दस बजे सोरोंकी गंगाजीपर हम सब पहुँच गये।

रातमें जब ऊँटगाड़ी चल रही थी तो हमारे पास ही ऊँटका भोज्य पदार्थ नीमके पत्ते भरे हुए थे। उनसे यह भी लाभ हुआ कि किसी-को-किसीकी छूतकी बीमारी नहीं लगी; क्योंकि कड़वे नीमके पत्तोंको डॉक्टर, वैद्य एंटीसेप्टिक मानते हैं। रास्तेभर गंगाजीके भजन नारी-कण्ठोंसे प्रवाहित होकर यात्राको सुखद बना रहे थे। बीचमें कोई छोटा बच्चा रोता भी था तो उसकी आवाज भजनोंमें लीन हो जाती थी। गंगाजी पहुँचकर पहले सब यात्री नित्यक्रियासे निवृत्त हुए। फिर गंगाजीमें डुबकी लगायी तो यात्राकी सब थकान छू-मन्तर हो गयी। सभी यात्री अपने-अपने घरोंसे टोसा (पूरी-पराठे) आम और मिर्चके अचारके साथ ले आये थे। रातमें भी खाते रहे, फिर सुबहके नाश्तेमें भी बासी भोज्य सामग्रीने हमारा साथ दिया। लौटते समय वहाँसे गंगारज और इलायचीदाने लेकर उसी ऊँटगाड़ीमें बैठकर पुनः दूसरे दिन बलदेव आ गये। मोहल्लेके अड़ोसी-पड़ोसियोंको एक-एक टुकड़ा गंगारज (गंगा माटी) और दस-बीस इलायचीके दाने बाँटकर गंगाप्रसाद वितरित करनेका पुण्य भी प्राप्त कर लिया।'

सोरोंकी इस गंगा-यात्राने काका हाथरसीके बाल-मनमें जो बीज बो दिया था, बादमें वह कर्णवासकी गंगा-यात्राके रूपमें पनपा। यह स्थान उत्तर प्रदेशके जिला बुलन्दशहरमें नरौराके पास है। यहाँ जानेका क्रम काकाजीने लगभग सन् १९३५-३६ ई०में प्रारम्भ किया, जो सन् १९८९ ई०में उनके दिवंगत होनेसे चार-पाँच वर्ष पूर्वतक चलता रहा। प्रत्येक वर्ष मईका महीना कर्णवास-प्रवासहेतु निर्धारित रहता था। सपरिवार कविता-पाठ, रिकार्डिंग आदिके सिलसिलेमें काकाजी भारत तथा विदेशोंमें भी भ्रमण करते रहते थे, किंतु मईके महीनेमें कर्णवास-प्रवासके क्रममें कभी कोई व्यवधान नहीं आया। अन्ततोगत्वा जब शरीर इस योग्य नहीं रहा, तभी लगभग ५० वर्षोंके इस निर्बाध क्रमको विराम देना पड़ा।

प्रारम्भके वर्षोंमें हाथरससे कर्णवासकी यात्रा भी सुगम नहीं थी। इसके लिये हाथरस किला रेलवे स्टेशनसे अद्धा गाड़ी (छः बोगियोंकी रेलगाड़ी)-द्वारा हाथरस जंक्शन स्टेशन पहुँचते थे। वहाँ इलाहाबादसे

आनेवाली गाड़ीकी प्रतीक्षा करते थे, जो रातको लगभग बारह बजे आती थी। उस गाड़ीसे रातके लगभग ढाई बजे राजघाट स्टेशन पहुँचते थे। चटाइयाँ बिछाकर वहीं प्लेटफार्मपर सो जाया जाता था। कुछ-कुछ उजाला होनेपर काकाजी अपने पुत्रके साथ स्टेशनसे बाहर निकलकर आगेकी यात्राके लिये कोई बैलगाड़ी तय करते थे। महिलाओं और सामानको बैलगाड़ीमें व्यवस्थित किया जाता था। शेष सदस्य साथमें पैदल चलते थे। सामान भी कोई कम नहीं होता था। पूरे परिवारके लिये एक माहका राशन, खाना बनानेके बर्तन, पुस्तकें आदि काकाजीका चित्रकारीका सामान, बेटेके लिये क्रिकेटका सामान भी, कुल मिलाकर कोई १०-१२ अदद हो जाते थे। साथमें एक सेवक भी रहता था। राजघाटसे कर्णवासतक लगभग २ मीलका मार्ग उस समय कच्चा ही था और कर्णवास तो लगभग जंगल ही था। रात्रिमें प्रकाशके लिये लालटेन और ढिबरीका ही सहारा था। पानीके लिये एकाध कुएँ थे और गंगाजल तो था ही।

जनश्रुतिके अनुसार राजा कर्णने यहाँ रहकर तपस्या की थी। इसीलिये इसका नाम कर्णवास हो गया। यहाँ देवीजीका एक प्राचीन मन्दिर है। इन्हें कर्णकी आराध्या देवी बताया जाता है। इस मन्दिरकी बड़ी मान्यता है। वैसे तो स्नानार्थी तथा दर्शनार्थी वर्षभर यहाँ आते रहते हैं, किंतु प्रत्येक वर्ष गंगादशहराके दिन यहाँ मेला लगता है। स्थानीय लोग इसे 'लक्खी मेला' कहते हैं; क्योंकि इसमें लाखोंकी भीड़ जुटती है। काका हाथरसी इस मेलेके सम्बन्धमें लिखते हैं—

इसमें झूला, सर्कस, खेल, तमाशे यात्रियोंका मनोरंजन करते हैं। एक दिन पहलेसे ही बैलगाड़ियोंकी लाइन निकटके गाँवोंसे आनी आरम्भ हो जाती है। बैलोंके गलेमें लटकी घंटियाँ बैलोंकी चालके साथ बजने लगती हैं तो सुखद संगीतका आनन्द प्राप्त होता है। ग्रामीण महिलाओंके झुण्ड-के-झुण्ड लोकगीत एवं गंगाके भजन गाते हुए फूल और जौ जमीनपर बिखेरते हुए जीवन धन्य करते हैं।

गंगा-स्नानके बाद पुरुषवर्ग गंगा-किनारेसे रेती (बालू) लाकर, उसपर कण्डोंकी आग जलाकर दाल-बाटी और चूरमा बनाकर, गंगाजीका भोग लगाकर खाते हैं तो ५६ भोग ३६ व्यंजन उसके सामने फीके लगते हैं। गंगाजलमें हाजमा-शक्ति गजबकी होती है। भर-पेट दाल-बाटी खानेपर भी उदरमें कोई भारीपन महसूस नहीं होता। वहाँ पहुँचते ही खुलकर भूख लगती है और अच्छी भूख लगनेपर भोजन भी स्वादिष्ट लगता है। पेटके सभी विकार दूर हो जाते हैं। मैं सारे भारतमें घूम चुका हूँ, लेकिन ऐसा आनन्ददायक और स्वास्थ्यवर्धक स्थान मैंने दूसरा नहीं देखा। कर्णवाससे ४-५ मीलके क्षेत्रमें ऐसा सुखद स्फूर्तिदायक वायुमण्डल रहता है, जो वहाँ जानेपर ही अनुभव किया जा सकता है।

देवीजीके मन्दिरके अतिरिक्त वहाँ और भी कुछ छोटे-मोटे मन्दिर थे। गंगातटस्थित यह कर्णवास अपने शान्त और निर्मल वातावरणके कारण अनेक सन्तोंकी तपस्थली रहा है। उड़ीसासे स्वामी पूर्णानन्द तथा बंगाल से स्वामी निर्मलानन्द दोनोंने यहाँ आकर साधना-तपस्या में काफी समय व्यतीत किया था। क्रमश: उड़िया बाबा एवं बंगाली बाबाके नामोंसे विख्यात ये सन्तद्वय स्थानीय परम्परामें राधा-कृष्णकी जोड़ीके नामसे जाने जाते थे। कुछ काल पश्चात् उड़ियाबाबाने वृन्दावनमें अपना आश्रम बना लिया था, किंतु बंगाली बाबा कर्णवासमें ही साधनारत रहे।

उन्हीं दिनों ग्रीष्मकालीन प्रवासहेतु कलकत्ताकी एक धर्मनिष्ठ महिला रम्पाबाईका कर्णवास आगमन हुआ। रम्पाबाई मूलत: राजस्थानकी थीं तथा बाल विधवा थीं। कलकत्तामें इनकी विशाल सम्पत्ति थी। कर्णवासमें बंगाली बाबासे भेंट होनेपर उनसे प्रभावित होकर ये उनकी शिष्या बन गयीं। अपनी सम्पत्ति बेचकर उन्होंने कर्णवासमें जमीन लेकर देवत्रयमन्दिर नामसे एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया। सन्त-महात्माओंके लिये विशेष कुटियाँ एवं तीर्थयात्रियोंके लिये भवन बनवाये। सदाव्रतके संचालनहेतु रसोईगृहकी व्यवस्था भी की।

बंगाली बाबाकी प्रेरणासे रम्पाबाईने सम्पूर्ण देवत्रयमन्दिर-परिसर देवार्पण कर दिया। इसके सुचारु संचालन तथा व्यवस्थाहेतु एक ट्रस्ट गठित कर दिया गया था।

काका हाथरसीके अग्रज भजनलाल गर्ग (काकाजीका वास्तविक नाम प्रभुलाल गर्ग था।) अत्यन्त धर्मप्राण व्यक्ति थे तथा इन्हीं बंगाली बाबाके शिष्य थे। प्रत्येक गुरुपूर्णिमाको वे हाथरससे कर्णवास अपने गुरुके दर्शनहेतु अवश्य जाते थे। रम्पाबाईसे उनका अच्छा परिचय था। इसी माध्यमसे काका भी रम्पाबाई से परिचित हो गये। वैसे वे स्वयं भी बंगाली बाबाके भक्त थे। उनके पुत्र डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्गने तो बंगाली बाबासे दीक्षा भी ली थी। इस प्रकार कर्णवास-प्रवासमें काका हाथरसी देवत्रयमन्दिरमें ही ठहरा करते थे। रम्पाबाईका काकाजीपर विशेष स्नेह था। वे उन्हें पुत्रवत् मानती थीं। देवत्रय ट्रस्टमें काकाजी भी एक सदस्य थे। इस ट्रस्टने कर्णवासमें अनेक जनसुविधाएँ उपलब्ध करायी थीं। एक नि:शुल्क चिकित्सालय भी प्रारम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत प्रसूतिकेन्द्र भी संचालित किया गया, जिससे निकटवर्ती ग्रामीण महिलाओंको सुविधा प्राप्त हो सके। इस केन्द्रमें अनेक निष्काम कर्मयोगी चिकित्सक अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे। देवत्रय दातव्य अस्पताल नामसे इसका साइन बोर्ड स्वयं काकाजीने ही पेंट किया था।

रम्पाबाईके देहान्तके पश्चात् यह स्थान अन्य साधुओंके हाथमें चला गया। कुछ वर्षों पश्चात् दिल्लीकी ज्योतिर्मयी माँने जब देवत्रय मन्दिरकी दुर्दशा देखी तो इसका संचालन अपने हाथमें ले लिया। वे भी स्वामी निर्मलानन्द (बंगाली बाबा)-की शिष्या थीं। इन्होंने इसके सुधार तथा विकासहेतु लाखों रुपये भी व्यय किये तथा कुछ नये मन्दिर भी बनवाये। गंगातटस्थित शिवके मुख्य मन्दिरसहित द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके मन्दिरोंकी जिस दिन प्राणप्रतिष्ठा हुई, उसके अगले दिन काकाजीने नये घड़ेमें गंगाजल भरवाकर इन सभी मन्दिरोंमें जाकर जल चढ़ाया तथा पूजा की।

कर्णवासके एक मासके प्रवासमें काकाजी सबेरे ४-५ बजे उठकर गंगाकिनारे टहलते थे, व्यायाम करते थे। लगभग एक घंटा गंगामें तैरते तथा स्नान करते थे। फिर मन्दिरमें पूजा-अर्चना करते। इन सब गतिविधियोंमें पुत्र लक्ष्मीनारायण उनके साथ रहता था। दोपहरमें भोजन तथा विश्रामके पश्चात् लगभग दो घंटे चित्र बनानेमें व्यतीत होते थे। हास्यकवि होनेके साथ ही वे एक कुशल चित्रकार भी थे, उनके बनाये वीणावादिनी सरस्वती तथा अनेक शास्त्रीय संगीत कलाकारोंके तैलचित्र आज भी संगीत कार्यालय, हाथरसकी दीवारोंको सुशोभित कर रहे हैं। यहाँ कर्णवासमें ही उन्होंने नल-दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान् आदि अनेक पौराणिक चरित्रों तथा प्रसंगोंके तैलचित्र बनाये। स्वामी निर्मलानन्द जो देवत्रयमन्दिर-परिसर-स्थित कुटियामें रहते थे, उन्होंने काकाजीसे देवत्रयका एक चित्र बनानेका अनुरोध किया। उनकी इच्छा थी कि इस चित्रमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों शास्त्रोक्त विवरणानुसार चित्रित हों, जिससे कि देवत्रयमन्दिरमें उसे पूजाहेतु प्रतिष्ठित किया जा सके। काकाजीने वैसा ही किया तथा स्वामीजीने उस चित्रको मन्दिरमें लगवा दिया पूजार्थ! रम्पाबाईके अनुरोधपर उन्होंने उनके कक्षकी दीवारपर जटायु-वधका प्रसंग चित्रित किया था। कई सन्त, महात्माओंके भी चित्र कर्णवासमें उन्होंने बनाये। उड़िया बाबाके भक्तोंके अनुरोधपर उन्होंने उनके अनेक चित्र बनाकर उन भक्तोंको भेंट किये थे। सन्ध्या-समय गंगाकिनारे टहलना, मन्दिरकी आरतीमें भाग लेना ये उनके दैनिक कार्यक्रम थे। रात्रिके समय गंगाकिनारे बाँसुरी बजानेमें उन्हें विशेष आनन्द आता था। साथ आये बेटेका अधिकांश समय विभिन्न साधु-सन्तोंके साहचर्यमें ही व्यतीत होता था।

उन दिनों कर्णवासमें स्वामी स्वरूपानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, नारायण स्वामी (दण्डी स्वामी), स्वामी स्वतन्त्रानन्द (बादमें कैलास आश्रम ऋषिकेशके महामण्डलेश्वर), स्वामी गंगेश्वरानन्द प्रज्ञाचक्षु प्रभृति अनेक महान् सन्त-महात्मा साधनारत थे। इसके अतिरिक्त स्वामी निर्मलानन्द (बंगाली बाबा)-के दर्शनार्थ माँ आनन्दमयी, स्वामी प्रबोधानन्द, महान् विद्वान् अखण्डानन्द

महाराज-जैसी आध्यात्मिक विभूतियोंका कर्णवास-आगमन होता रहता था।

कर्णवासमें ४० वर्षोंसे शिवमन्दिरमें तपस्यारत, शिवको अपना गुरु माननेवाले स्वामी निर्मलानन्दकी गंगामें अटूट श्रद्धा थी। एक बार खुर्जासे एक महिला अपने पति सेठ गंगासहायको लेकर उनकी शरणमें आयी। उसके पति मधुमेहसे ग्रसित हो मृत्युके कगारपर पहुँच चुके थे। बाबाने उसे गंगा मैयासे प्रार्थना करनेको कहा। गंगाजीकी कुछ ऐसी कृपा हुई कि मरणासन्न सेठजीको एक ही दिनमें स्वास्थ्यलाभ हो गया।

कर्णवाससे कुछ दूर एक महिला रहती थी, जिसके विषयमें यह प्रचलित था कि उसने विगत ३० वर्षोंसे भी अधिक समयसे भोजन त्याग रखा था तथा वह केवल गंगाजल ही ग्रहण करती थी। स्थानीय लोगोंसे यह जाननेपर काकाजीने उसके दर्शनार्थ जानेका विचार किया। किंतु इसके पूर्व ही वह महिला स्वयं वहाँ आ गयी, जहाँ काकाजी ठहरे थे। उसने बताया कि जब उसे ज्ञात हुआ कि काका हाथरसी कर्णवास आये हुए हैं, तो वह उनसे भेंट करने आ गयी।

कर्णवासके निकटवर्ती जनमानसमें गंगाके लिये असीम श्रद्धा, अडिग विश्वास था। आस-पासके गाँवोंमें यदि किसीके यहाँ बच्चे जीवित नहीं रहते थे तो वे व्यक्ति इसके निवारणहेतु छोटे बच्चोंको 'गंगामें सिराने' के लिये लाते थे। गाजे-बाजे, ढोल-ताशेसहित नाते-रिश्तेदारोंके साथ बच्चेका पिता उसे कन्धेपर बैठाये या गोदमें लिये आता था। पिताद्वारा उसे गंगाजीमें छोड़ दिया जाता था तथा पुजारी या पण्डेद्वारा उसे तुरन्त गंगाजीसे निकालकर पिताको सौंप दिया जाता था। यह क्रिया दो-तीन बार की जाती थी। इस प्रकार गंगाको अर्पित तथा गंगाप्रदत्त वह बच्चा जीवित रह जाता था, ऐसी मान्यता थी।

प्राचीन-देवी मन्दिरके आस-पास कई बार उत्खननमें कुछ कलश प्राप्त हुए हैं, जिनमें मुद्राएँ (सिक्के) तथा बर्तनोंके अवशेष आदि प्राप्त हुए हैं, जो इस स्थलके पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक महत्त्वकी ओर इंगित करते हैं।

स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीका मानना था कि गंगोत्रीसे गंगासागरपर्यन्त ऐसा निर्मल गंगाजल उन्होंने कहीं नहीं पाया। काकाजी तो एक मासके प्रवासभर गंगाजल ही पीते तथा उसीमें बना भोजन ग्रहण करते थे। कर्णवासकी गंगा उनके मन-मस्तिष्कमें ऐसी रच-बस गयी थीं कि उनके अन्तिम इच्छानुसार मृत्यूपरान्त उनकी अस्थियाँ कर्णवासकी गंगामें ही प्रवाहित की गयीं।

कर्णवासकी गंगा आज भी काका हाथरसीके काव्यमें प्रवाहित हो रही हैं—

ज्येष्ठ मास में यहाँ दशहरा मेला लगता
अति पवित्र इस तपोभूमि का कोना कोना।
कर्णवास में राजा कर्ण वास करते थे
दान दिया करते थे नित्य सवा मन सोना॥
देवी के दर्शन को नित्य भक्त जन आते
उसकी छाया में शिशु का मुंडन करवाते।
फूल-बताशे और नारियल अर्पण करते
मन ही मन निज मनोकामना कहते जाते॥
मेले में नर-नारी ग्रामीणों की टोली
हरा घाघरा, लाल दुपट्टा, पीली चोली।
मीठे-मीठे लोकगीत गातीं ललनाएँ
दौड़ रहे गाड़ी, रब्बा, रथ और मझोली॥
गंगा के कण-कण में ग्रामीणों की श्रद्धा
शूल-फूल में माटी-धूल, डाल-पत्ते में।
लोक कला का ऐसा अद्भुत दृश्य किसीको
मिल सकता है भला बम्बई कलकत्ते में॥
पतित-पावनी, तरणि-तारिणी, पाप-नाशिनी
मारें डुबकी 'हर हर गंगे' बोल रहे हैं।
कोई बना रहे रेती में दाल-बाटियाँ
कोई गंगा-जल में सत्तू घोल रहे हैं॥
वेद शास्त्रों द्वारा वंदित गंगामाई
वाल्मीकि-तुलसी-रवीन्द्र ने महिमा गाई।
उसकी गोदी में सब ही अवगाहन करते
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलिम, ईसाई॥

चूड़ामणि

(श्रीजानकीजीकी मुँहदिखाई)

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

वाद्योंकी ध्वनि ज्यों-ज्यों समीप आने लगी, त्यों-त्यों राजभवनकी गतिविधियोंमें भी तीव्रता आने लगी। आती भी क्यों नहीं; क्योंकि दो विश्वसनीय धावकोंने तीव्रगामी अश्वोंपर आकर यह समाचार जो दे दिया था कि शिव-धनुष-भंगके कारण केवल ज्येष्ठ राजकुमार रामका ही नहीं, अपितु जनकनन्दिनी सीताकी तीनों अनुजाओंका विवाह भी रामके तीनों अनुजोंके साथ अत्यन्त आनन्दसे सम्पन्न हुआ है। अब चारों राजकुमार अपनी नववधुओंके साथ आ रहे हैं। सोनेमें सुगन्ध-जैसा आनन्द तो तब आ गया कि जब विदित हुआ कि विश्वभरमें क्षत्रियकुलद्रोहीके रूपमें विख्यात भार्गव

परशुराम श्रीरामको अपना वैष्णवी धनुष एवं कई अमोघ अस्त्र देकर तप करने चले गये।

ऐसेमें प्रतीक्षाकी घड़ियाँ युगोंके समान न लगतीं तो आश्चर्य होता। राजभवनकी हलचलसे अधिक हलचल तो राजभवनवासियोंके हृदयमें मच रही थी। अबतक जो केवल महारानी कहलाती आ रही थीं, अब वे रानियोंकी सास कहलायेंगी। ऐसेमें उन जननियोंके आनन्दोन्मादका वर्णन करनेमें शब्दकोश अधूरा क्या कोश कहलानेमें ही लजाकर रह गया था। कौसल्या-सुमित्रा-कैकेयी—तीनों महारानियोंके साथ परिचारिकाएँ मांगलिक-कलश, आरतियोंके थाल तो कोई अवसरके अनुकूल मांगलिक द्रव्य ले-लेकर राजद्वारकी ओर बढ़ने लगीं। कुछ ही समयमें राजगुरु महर्षि वसिष्ठके साथ अयोध्यानरेश महाराजा दशरथका भव्य रथ राजद्वारपर आ पहुँचा। पुष्पवर्षाके मध्य राजगुरु नरेशसहित राजभवनमें प्रविष्ट हो गये। द्वारपर परिछन-आरती एवं अपनी-अपनी नववधुओंके साथ गठजोड़ोंको सम्हालते हुए चारों राजकुमार धीरे-धीरे बढ़ने लगे। राजकीय कक्षमें निर्धारित आसनोंपर उन्हें बैठा देखकर नरेश मुसकराते हुए ज्येष्ठ महारानी कौसल्यासे बोले—

'देखो, ये बालिका वधुएँ किस प्रकार सिमटी-सी सकुचाती हुई-सी बैठी हैं। यात्रासे श्रमित भी हैं। इनकी सादर सस्नेह मुँहदिखाई करो। कृपणता त्यागकर, श्रेष्ठातिश्रेष्ठ जो तुमने हमसे छिपाकर रखा हुआ है, वह इन्हें भेंटकर इनकी अन्य व्यवस्था करो।'

छिपानेकी बात सुनकर तीनों महारानियाँ अपनी तिरछी चितवनसे महाराजको देखती हुई वधुओंकी ओर बढ़ी ही थीं कि महाराज दशरथ हँसते हुए पुनः बोले, 'हाँ-हाँ, सर्वप्रथम महारानी कौसल्या अपना पिटारा खोलेंगी।' महारानी कौसल्या अपने पीछे आती हुई कैकेयीका हाथ पकड़कर, उन्हें आगे बढ़ाती हुई बोलीं, 'प्रथम मुँहदिखाई मेरी प्रिय अनुजा तुम करो।'

संकोचमें घिरी हुई महारानी कैकेयी बोलीं, 'जीजी! यह आप क्या कह रही हैं, वरिष्ठातिवरिष्ठासे पूर्व कनिष्ठातिकनिष्ठा, नहीं-नहीं। प्रथम अधिकार आपका है।'

'अच्छा, कनिष्ठा होकर वरिष्ठाको आदेश दे रही है कि उपदेश कर रही है? अथवा सबके मध्यसे इस वरिष्ठा कहलानेवालीको विक्षिप्ता सिद्ध करनेके षड्यन्त्रकी

भूमिकाकी रचना करने जा रही है।'

'शिव-शिव, जीजी! आप अपनी अनुजापर एकाएक ऐसा भीषण आरोप लगा देंगी, इसकी तो मैं स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकती।'

'अब स्वप्नकी जागृतिकी बात कर, कल्पना नहीं यथार्थका निर्वाह कर। मेरी प्रिय अनुजे! वरिष्ठोंको वरिष्ठ बना रहने दे। उन्हें वरिष्ठताके दम्भमें बौरा मत। चल, जो अपने इन महाराजासे छिपाकर रखा है, वह वधूको देकर इनके भ्रम-भूतका उद्धार कर।'

कैकेयी कौसल्याका एक सुस्नेहिल धौल खाकर, अपने संकोचसे वधुओंके संकोचको संकुचित करते हुए बढ़ीं। इस समय वे समस्त समुपस्थित परिकरके निर्निमेष नेत्रोंका केन्द्र जो सहसा बन गयी थीं। सभीकी उत्सुकता चरम सीमापर थी कि देखें, कनिष्ठ महारानी क्या देंगी? कैकेयीने धीरेसे ज्यों ही जानकीका अवगुण्ठन सरकाया, उनके नेत्र सौन्दर्य-सिन्धुकी सीमा-जैसे उस उत्फुल्ल सहस्रदलकमलके सुगन्धाकुल भ्रमर बनकर रह गये। विदेहनन्दिनीके मुखमण्डलने विदेहराजकी सम्बन्धिनीको किसी अश्रुत सम्मोहनमन्त्रके अलौकिक प्रभावसे विदेही बना दिया। उस समय कैकेयीकी दशा देखकर जन-जनको स्वाभाविक रूपसे यही प्रतीत होने लगा। महारानीकी आनन्द-समाधि अनुभव करते हुए महाराज हँसते हुए बोले, 'विदग्ध परिचारिकाओ! देखो, तुम्हारी मृगनयनी गजगामिनी महारानी विमूर्च्छित हो गयी। प्रयत्नपूर्वक इन्हें चैतन्य करो।'

महाराजके व्यंजनात्मक शब्दोंका अर्थ 'विलम्ब' मान्य करते हुए महारानी कैकेयीने अयोध्याके सुन्दरतम भवन कनकभवनकी रत्नजटित कुंजिगुच्छिका धीरेसे अपने आँचलसे खोलकर जानकीजीके आँचलमें बाँध दी। यह देखते ही भगवती अरुन्धती बोलीं, 'महारानी! अपना कनकभवन दे डाला। यह क्या…'

'महादेवि! महाराजने इस भवनका निर्माण कनिष्ठ महारानीके लिये कराया था। जिसे आशुतोष महादेवकी अहैतुकी कृपा अब वरिष्ठा बना रही है, वह उसमें निवास करे तो क्या अन्याय नहीं होगा? अब उस कनकभवनकी कनकांगी स्वामिनी आ गयी तो उसकी रक्षिकाको उसे समर्पित कर देना ही धर्म है। मैंने उसीका निर्वाह इस आशा-आकांक्षासे किया है कि कल मैथिली भी अपनी वधूको इसी प्रकार इसे साशिष प्रदान करे।'

चरण-वन्दना करती हुई जनकनन्दिनीको अनेकानेक आशीर्वाद देती हुई महारानी कैकेयी लौट गयीं। महाराजके पुनः संकेतपर महारानी कौसल्याने अब हाथ पकड़कर महारानी सुमित्राको बढ़ा दिया। जन-जनकी उत्सुकताको बढ़ाते हुए सुमित्रा बढ़ चलीं। कनकभवनके पश्चात् अब अयोध्यामें ऐसी कौन-सी अमूल्य कि बहुमूल्य वस्तु रह गयी है, जिसे महारानी सुमित्रा भेंटकर महारानी कैकेयीसे अधिक सुयशकी पात्रा स्वयंको सिद्ध करनेमें सक्षम सिद्ध होंगी?

महारानी सुमित्रा बढ़कर जानकीके सामने जा बैठीं। तनिक-सा अवगुण्ठन हटाकर मुख देखते ही, एक बार तो कैकेयीके समान भाव-समाधिमें जानेको बाध्य होते-होते उन्होंने स्वयंको सम्हाल लिया। धीरेसे अपने जूड़ेसे निकालकर चूड़ामणि जानकीके जूड़ेमें लगाकर लौट आयीं।

'चूड़ामणि, केवल चूड़ामणि मँझली महारानीने दी। रत्नमण्डित ललन्तिका (लम्बा हार) नहीं दी। कैसी कृपण हैं।' कहींसे ये शब्द धीरेसे कानोंमें आते ही महर्षि वसिष्ठ बोल पड़े, 'अरे, चूड़ामणि, यह केवल चूड़ामणि, नहीं। केवल अयोध्याके नहीं, विश्वभरके समस्त आभूषण मिलकर भी इस चूड़ामणिकी समानता नहीं कर सकते। जो इसका इतिहास नहीं जानते, वे ही 'चूड़ामणि, केवल चूड़ामणि कह रहे हैं।' यह चूड़ामणि समस्त विभूषण-मालाओंकी वह शिरोरत्न है, जिसकी समता केवल श्रीमन्नारायणकी हृदयभूषण कौस्तुभमणि ही कर सकती है। इसका इतिहास सुनो—

'देवों और दानवोंने अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थन जिस प्रकार किया, उस कथासे सभी परिचित हैं। सर्वप्रथम कालकूट महाविष निकला, जिसे भगवान्

शंकरने ग्रहणकर विश्वको भयमुक्त किया। उसके पश्चात् गजराज ऐरावत, उच्चैश्रवा अश्व, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, पांचजन्य, वारुणी-रम्भा आदिके क्रममें भगवती महालक्ष्मीसे पूर्व रंग-रूपमें उन्हींकी समानता करनेवाली एक अपूर्व सुन्दरी रत्नाकरनन्दिनी प्रकट हुई। श्रीहरिका अवलोकन करते ही वह हृदयसे उनके प्रति समर्पित हो गयी। इनसे अपने मनोभाव कैसे व्यक्त करूँ? संकोचमें भरी हुई, अभी वह यह विचार कर ही रही थी कि इसी मध्य महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव हो गया। उन कमलनयनी कमलासनाने बढ़कर अपने करकमलोंमें धारण की हुई पंचकमल माला (श्वेत-नील-पीत-अरुण-कर्बुरी) श्रीहरिको समर्पित कर डाली। सागरराज रत्नाकरकी वे ज्येष्ठ सुता मन-ही-मन अकुलाकर रह गयीं। मैं अपनी अनुजाके स्वामीके प्रति अपना समर्पण कैसे करूँ, यह विचारकर वे खड़ी-की-खड़ी रह गयीं। अन्तरकी जाननेवाले उस अन्तरार्पिताके निकट श्रीहरि स्वयं पहुँच गये। धीरेसे बोले—

'मैं तुम्हारा भाव जानता हूँ। पृथ्वीको भार-निवृत्त करनेके लिये जब-जब भी मैं अवतार ग्रहण करूँगा, मेरी संहारिणीशक्तिके रूपमें तुम्हारा भी अवतरण होगा। सम्पूर्णरूपेण तुम्हें कलियुगमें श्रीकल्किरूपमें अंगीकार करूँगा। अभी सत्ययुग है। तुम त्रेता-द्वापरमें त्रिकूटा-शिखरपर वैष्णवी नामसे अपने अर्चकोंकी मनोकामनाकी पूर्ति करती हुई, तपस्या करो।'

'तपस्याके लिये विदा होते हुए, उन्होंने अपने केशपाशसे निकालकर, विश्वकर्माद्वारा निर्मित, दिव्य-रत्नजटित यह चूड़ामणि जो उन्हें उनके पिताने उन्हें धराधामपर प्रकट होते समय दी थी, वह उन्होंने श्रीहरिको भेंट कर दी। अपने समीप खड़े देवराजकी लालायित दृष्टि देखकर, उन्होंने वह उन्हें दे दी। प्रसन्नचित्त देवराजने देवराज्ञीके जूड़ेमें उसे स्थापित कर दिया। देवशत्रु शम्बरासुरका सम्मुख रणमें वधकर, अपने ये महाराजा दशरथ देवराजका आमन्त्रण पाकर शम्बर-रणमें अपना अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली महारानी कैकेयीके साथ सदेह देवलोक पधारे। देवराजने उनका अभिनन्दन करते हुए स्वर्गंगा मन्दाकिनीके दिव्य हंसोंके पंख उन्हें भेंट किये। वे ही महाराजाने मिथिलामें वरयात्राके समय अपने चारों राजकुमारोंकी कलगियोंमें सजाये। इसी अवसरपर देवराज्ञी इन्द्राणीने यह चूड़ामणि महारानीको भेंट करते हुए कहा कि जिस नारीके केशपाशमें यह दिव्य चूड़ामणि रहेगी, उसका सौभाग्य अक्षत-अक्षय-अखण्ड रहेगा। उसके स्वामीके राज्यमें अकाल-अतिवृष्टिकी समस्याएँ नहीं आयेंगी। कोई शत्रु उनका पराभव नहीं कर सकेगा।

'महारानी कैकेयीने अयोध्या आकर यह चूड़ामणि ज्येष्ठ महारानीको समर्पित कर दी। उन्होंने यह विचारकर कि कनिष्ठा कैकेयीको तो महाराजका सर्वाधिक स्नेह प्राप्त हो रहा है। उसी प्रकार मुझे प्रजाका सम्मान मिल रहा है किंतु ये मध्यमा महारानी सुमित्रा तो रात-दिन परिवारके प्रत्येक कर्ममें, उनकी सुख-सुविधाके ध्यानमें लगी रहती हैं। अत: इस चूड़ामणिकी वास्तविक अधिकारिणी ये ही हैं। इनका और हमारा सौभाग्य एक ही है, दो नहीं—यह विचारकर इन्हें भेंट कर दी। अब इन नववधू जनकनन्दिनीके सौभाग्यको ही वात्सल्यवश अपना सौभाग्य मान्य करते हुए, यह शिरोरत्न चूड़ामणि इन्हें भेंट की है। इसकी समानता करनेकी क्षमता विश्वभरके किसी भी आभूषणमें नहीं हो सकती। मझली महारानी देवी सुमित्रा कृपाकी मूर्ति हैं। इनपर कृपणताका आरोपण करना श्रीहरिकी कृपासे वंचित होना ही है।'

महर्षि वसिष्ठके मौन होते ही महाराज दशरथ धीरेसे मुसकराते हुए महारानी कौसल्यासे बोले, 'तुमसे कनिष्ठ हमारी कोई अन्य महारानी हो तो उसका भी अनुसन्धानकर उसे बढ़ाइये। उसके पश्चात् ही तो आपका मुँहदिखाईका वह मुहूर्त आयेगा, जिसकी प्रतीक्षा हमारे साथ-साथ समस्त समुपस्थित जन अपनी श्वासमालाको संयमित करते हुए कर रहे हैं।'

महारानी कौसल्या महाराजको भावोंभरी विलोचन कोरसे ताकते हुए, उन्हींकी मुद्राका अनुकरण करते हुए

धीरेसे बोलीं, 'ये दोनों तो मेरी अनुजा थीं, जो अपने कार्यकी पूर्ति यशस्वितापूर्वक कर गयीं। एक वरिष्ठा अभी शेष है, जो विधिवत् मेरी सपत्नीकी भूमिका प्रारम्भसे कर रही है। उसे जब मुँहदिखाई करनी हो करे, मैं तो अभी…'

'ठहरो-ठहरो, अपनी वरिष्ठा सपत्नीसे हमें भी तो परिचित कराती जाओ। ताकि हम तुम्हारे पश्चात् उससे भी आग्रह कर सकें।'

'आप उससे भली-भाँति परिचित हैं। अपरिचित बननेका स्वाँग त्यागकर, मेरे मार्गकी बाधा बननेका प्रयत्न कृपापूर्वक मत कीजिये।'

'महारानी! हम सत्य कह रहे हैं। हम उसे नहीं जानते।'

'जो आपको बाहुपाशमें भरे, आपके मन-मस्तिष्क-हृदयपर, अष्ट प्रहरके पल-पल क्या विपल-विपलके सहस्रांशतकपर अधिकार किये बैठी हैं, आप उसे नहीं जानते? इसके लिये आपको धन्य-धन्य कहनेके अतिरिक्त आप पृथ्वीपतिके चरणोंकी चेरी और कह भी क्या सकती है?'

'महारानी! आप दिखनेभरको सरल दिखती हैं अन्यथा आप-जैसी कुटिल… नहीं तो प्रहेलिकाओंके बाणोंसे अपने प्राणवल्लभके मर्मस्थानको बींधनेवाली कोई अन्य तो नहीं हो सकती। अपनी मनीषाका मन्थनकर यह दीन दशरथ यही कह सकता है।'

'दीनानाथ! सत्य, परम सत्य' कहती हुई महारानी कौसल्या जनकदुलारीकी ओर बढ़ चलीं। धीरेसे जानकीका छोटा-सा अवगुण्ठन उठाकर, हर्षातिरेकमें निकट खड़े रामका हाथ थामकर जानकीके हाथमें देते हुए बोलीं, 'तुम्हारी दोनों सासोंकी समता करनेकी क्षमता तो मुझमें नहीं है। तुझ सुवर्णाको भेंट करनेके लिये यही श्यामला, जो मेरे अन्तस्तलका समग्र कोश है, वही तुझे भेंट कर रही हूँ। ले, इसे सम्हाल और मुझे पगछुईमें मुक्ति प्रदान कर।'

—कहती हुई ज्यों ही महारानी लौटनेको हुईं, जानकी उनके चरणोंमें लोट गयीं। सुस्नेहमय हाथ उनके शीशपर फेरते हुए वे स्वयंको संयमित करते हुए अपने आसनपर आकर, कोरोंतक आ गये जलके दो-दो बिन्दुओंको छिटककर बैठ गयीं। इस अवसरपर समुपस्थित एक भी नर-नारी ऐसा नहीं दिख रहा था कि जिसके नेत्रोंकी सुस्थिर पुतली श्रीराम-जननी बने बिना न रह गयी हो।

'बड़ी महारानी वास्तवमें बड़ी महारानी सिद्ध हो गयीं' कहते हुए महर्षि वसिष्ठ देवी अरुन्धतीके साथ अपने आश्रममें चले गये।*

बिल्लीका बच्चा सिर्फ इतना ही जानता है कि 'म्यावँ, म्यावँ' करके अपनी माताको किस प्रकार पुकारना चाहिये। फिर आगे क्या करना है, सो सब बिल्लीको मालूम रहता है। वह अपने बच्चोंको, जहाँ उसे अच्छा लगता है, ले जाकर रखती है। घड़ीभरमें रसोईघरमें, घड़ी ही भरमें मालिकके गुदगुदे बिछौनेपर! हाँ, पर बिल्लीके बच्चेको सिर्फ इतना ज्ञान अवश्य होता है कि अपनी माँको कैसे पुकारूँ। इसी न्यायसे, मनुष्य जब अनन्य भावसे अपनी परम दयालु माता परमात्माकी पुकार करता है, तब वह तुरंत ही दौड़ता हुआ आकर उसका योगक्षेम सँभालता है। सिर्फ पुकार करना ही उसका काम है! हाँ,—श्रीरामकृष्णजी परमहंस

---

* (ज्ञात हो कि वन जाते समय जानकीजीने महारानी कैकेयीकी दी हुई काषाय साड़ी तो धारण कर ली थी, किंतु देवी अरुन्धती-महर्षि वसिष्ठ आदिने उन्हें आभूषण नहीं उतारने दिये थे। वे ही आभूषण हरणके समय वे स्थान-स्थानपर डालती हुई गयीं। उन्हींमेंके कुछ आभूषण सुग्रीवने श्रीरामको दिखाये थे। लंका पहुँचनेतक एकमात्र चूड़ामणि ही उनके पास शेष रही थी। उसका महत्त्व जाननेके कारण ही वह उन्होंने कहीं नहीं डाली। यही चूड़ामणि जानकीजीने पहचानके निमित्त श्रीहनुमान्‌जीको दी; क्योंकि विश्वभरमें वह अद्वितीय थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी विचार किया कि जबतक यह प्रभुके पास नहीं जायगी, लंकाका विनाश नहीं होगा।)

योग : एक विश्लेषण

(डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग)

प्राचीन भारतमें मूलतः योगकी साधना आत्माको परमात्मासे जोड़नेके लिये की जाती थी। इसीलिये इसका नाम योग पड़ा। ईश्वर या ब्रह्मके साथ यह संयोग या मिलन आत्म-साक्षात्कारके रूपमें होता है। यह मिलन भौतिक दृष्टिमें दो वस्तुओंके संयोगके समान नहीं होता है; क्योंकि वेदान्त-दर्शनके अनुसार परमेश्वर या ब्रह्मके अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता ही नहीं है। मानव-मन उस एक ही अस्तित्वके प्रातिभासिक रूपको ही संसारकी विभिन्नताओंके रूपमें देखता है। संसारकी इन विभिन्नताओंके पश्चात् भी सभी वस्तुओंमें एक नितान्त ईश्वरीय एकता वर्तमान है। इसीलिये योग आत्मज्ञानप्राप्तिका महान् साधन माना गया है।

जो लोग योगको जीवात्मा-परमात्माके संयोगका साधन नहीं मानते, वे भी उसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यताको यों समझ सकते हैं—किसी कटोरीमें जल डालकर उसमें सोनेका टुकड़ा डाल दिया जाय। वह नीचे डूब जायगा। यदि जल शुद्ध और निश्चल हो तो हम उस सोनेके टुकड़ेको देख सकते हैं, परंतु यदि उसमें मिट्टी मिली हो और वह हिल रहा हो तो सोना या तो दिखेगा ही नहीं या विकृतरूपमें दिखेगा। उसको देखनेके लिये ऐसा उपाय करना होगा कि जलकी मिट्टी निकल न जाय तो कम-से-कम नीचे बैठ जाय और उसका हिलना बन्द हो जाय। आत्मा सोनेकी भाँति शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य है, परंतु हम उसका सीधा साक्षात्कार नहीं करते, चित्त (मन)-के माध्यमसे करते हैं और चित्तकी वृत्तियों (पानीकी भाँति हिलने)-का निरोध ही योग है।

वस्तुतः योग न तो आसनों और प्राणायामोंकी ही प्रणाली है और न यह कोई दर्शनवाद ही है। ईश्वर-संयोग ही योग है। ईश्वरीय सायुज्यता ही सभी योगोंका लक्ष्य है। योग ईश्वरकी ओर शनैः-शनैः दृढ़तापूर्वक अग्रसर करता है। अहंकार-विनाश तथा अमरानन्दकी प्राप्तिमें ही सारे योगोंकी परिसमाप्ति है।

दत्तात्रेय योगशास्त्रमें प्राण एवं अपान, मन और प्राण तथा जीवात्मा और परमात्माके मिलनको योग कहा गया है। मोटे रूपमें यह जान लें कि योगके दो पक्ष हैं। क्रियाओं और आसनोंद्वारा शरीरको शुद्ध करना और स्वस्थ बनाना, जो हठयोग कहलाया। योगका दूसरा पक्ष आध्यात्मिक साधनाका है, जिसके प्रमुख अंग हैं—ध्यान, धारणा और समाधि आदि। योगके इस दूसरे पक्षकी साधना सर्वसाधारणके वशकी चीज नहीं है; क्योंकि इसके लिये अपेक्षित है—बड़ी साधना, आत्मनियन्त्रण, त्याग-तपस्या आदि। शरीरको शुद्ध और स्वस्थ रखनेमें योगके हठयोगके आसनोंका पक्ष बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबके लिये लाभदायक है, किंतु इसमें आध्यात्मिक गहराई नहीं है।

योगशास्त्रमें स्वीकृत योग शब्दके अर्थको गहराईसे समझना होगा। योगदर्शनकार महर्षि पतंजलिके अनुसार योगका अर्थ है—चित्तकी वृत्तियोंका निरोध। (यो० द० १।२) इस वाक्यमें चित्त, वृत्ति और निरोध तीन ऐसे शब्द हैं, जिनको समझे बिना वाक्यका अर्थ नहीं लग सकता। इसलिये इन तीनों शब्दोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

चित्त (मन)-का संक्षिप्त परिचय

योगदर्शनकारद्वारा प्रयुक्त चित्त शब्दसे अभिप्रेत मन है, पश्चिमके लोग जिसे सामान्यतः 'माइण्ड' (Mind) कहते हैं। 'चित्त' शब्दके लिये अन्तःकरण शब्दका प्रयोग भी प्रचलित है; क्योंकि शरीरमें मनकी स्थिति अन्तःकरण (अन्तः = भीतरी, करण = इन्द्रिय)-के रूपमें है। अमरकोषके अनुसार चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृत्, मानस—ये मनके पर्याय हैं। आयुर्वेदीय ग्रन्थ चरकसंहितामें अतीन्द्रिय, सत्त्व और चेतस् मनके पर्याय कहे गये हैं। (च०सं०सू० ८।४) बाह्य ज्ञानके कारण चक्षु आदि जो इन्द्रियाँ हैं, उन्हें अतिक्रान्त कर लेनेके कारण मन अतीन्द्रिय (Supersensuous) कहा गया है। कारण यह है कि मनके साथ योग होनेसे ही इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं, अन्यथा वे अपने कार्यमें असमर्थ रहती हैं।

चित्तमें सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणोंके लक्षण मिलनेके कारण मनको त्रिगुणात्मक कहा गया है। वैसे संसारका प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक होनेसे

प्रत्येक समय किसी-न-किसी गुणसे प्रभावित रहता है। इस नियमके अनुसार ही 'मन' प्रभावित रहता है।

सत्त्वगुणकी प्रधानतामें चित्त ज्ञान, प्रकाश स्वभाववाला होता है। उस समय चित्तमें अणिमा, महिमा आदि लौकिक ऐश्वर्यों और शब्द, स्पर्श आदि विषय सुखोंका उदय होता है। जब उसमें गौणरूपसे विद्यमान रजोगुण, तमोगुण दोनोंका मेल होता है, तब सांसारिक ऐश्वर्य तथा शब्दादि विषय प्रिय होते हैं, जब यह केवल तमोगुणसे युक्त होता है, तब अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यको प्राप्त होता है। इस प्रकार इन गुणोंकी न्यूनाधिकताकी स्थितिमें विश्वके समस्त व्यवहार चलते हैं। वही चित्त (मन) जब तमोगुणसे रहित होनेपर रजोगुणके अंशसे युक्त होता है, तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यको प्राप्त होता है। वही चित्त जब रजोगुणके लेशमात्रसे भी रहित होता है, तब स्वरूप-प्रतिष्ठ कहलाता है, तब चित्त सत्त्व और पुरुषकी भिन्नताका ज्ञान होता है, जिसको विवेक-ख्याति अर्थात् भेदज्ञान कहते हैं और 'धर्ममेघ' नामक समाधिकी ओर उन्मुख होता है। अर्थात् विवेक-ख्यातिके परिपक्व होनेपर धर्ममेघ समाधिकी अवस्था प्राप्त होती है, जिसको योगिजन 'परमप्रसंख्यान' कहते हैं (यो०सू० १।२ पर व्यासभाष्य)।

सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणोंके न्यूनाधिक्यसे चित्त (मन)-की पाँच अवस्थाएँ होती हैं—क्षिप्त (Restless), मूढ़ (Blinded), विक्षिप्त (Distracted), एकाग्र (Single Pointed) तथा निरुद्ध (Restricted)।

उपर्युक्त पाँच अवस्थाओंको ही योगभाष्यकारने अपने भाष्यमें 'चित्तभूमय:' अर्थात् चित्तकी भूमियाँ बताया है। इन पाँचों भूमियोंका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. क्षिप्त भूमि—इसे 'क्षिप्तावस्था' भी कहते हैं। रजोगुणके उद्रेकके कारण विषयोंमें ही व्यापृत रहनेवाली चित्तकी अवस्था 'क्षिप्त' भूमि है अर्थात् यह भूमि या अवस्था रजोगुणप्रधान होती है, तमस् और सत्त्व दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं। इसका कारण राग-द्वेषादि होते हैं। इस अवस्थामें धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य और अनैश्वर्यमें प्रवृत्ति होती है।

२. मूढ़ भूमि—इसे मूढ़ावस्था भी कहते हैं। मूढ़ वह अवस्था है, जिसमें तमोगुणकी प्रबलता रहती है, रज तथा सत्त्वगुण दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं। यह अवस्था काम, क्रोध, लोभ और मोहके कारण होती है। चित्तकी ऐसी अवस्थामें मनुष्यकी प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, राग और अनैश्वर्यमें होती है।

३. विक्षिप्त भूमि—इसे विक्षिप्तावस्था भी कहते हैं। इस अवस्थाको क्षिप्ता एवं मूढ़ा—इन दोनों अवस्थाओंसे कुछ बेहतर माना गया है; क्योंकि इसमें सत्त्वगुणाधिक्य रहता है। इसमें किंचित् कालपर्यन्त समाधि लगनेपर भी रजोगुणके जोर मारते रहनेके कारण बीच-बीचमें अन्य विषयोंकी ओर चित्त (मन) दौड़ जाता है। इसमें रज और तम दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं।

४. एकाग्र भूमि—इसे एकाग्रावस्था भी कहते हैं। एकाग्रका अर्थ है किसी एक बिन्दुपर केन्द्रीभूत होना। जिस चित्तका अग्र या अवलम्बन एक है, उसे एकाग्रचित्त माना जाता है। इस अवस्थामें चित्तकी वृत्तियाँ बाह्य विषयोंसे दूर हो जाती हैं।

५. निरुद्ध भूमि—इसे निरुद्धावस्था भी कहते हैं, जो चित्तकी पाँचवीं और सर्वोत्तम अवस्था मानी जाती है। जिस अवस्थामें चित्तकी तामस और राजस वृत्तियोंके साथ-साथ सात्त्विक वृत्तिका भी निरोध हो जाता है, केवल संस्कारमात्र चित्तमें रहते हैं।

योगशास्त्रानुसार इस अवस्थामें चित्त अपनी स्वाभाविक स्थिर शान्त अवस्थामें आ जाता है तथा सब संस्कारोंके तिरोभावके साथ ही विवेकख्यातिका भी निरोध हो जाता है, केवल परवैराग्यके संस्कारमात्र शेष रहते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश प्रभृति पाँचों क्लेशसहित कर्माशय-रूप जन्मादिकोंके बीज नहीं रहते। इसलिये इसको असम्प्रज्ञात तथा निर्बीज समाधि भी कहते हैं; क्योंकि इस अवस्थामें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयका किंचित्मात्र भी ज्ञान नहीं रहता।

मनकी चंचलता उसका एक महत्त्वपूर्ण धर्म है। वह सर्वत्र अस्थिर भावसे घूमता है। यह उसका दोष भी है। मनकी अस्थिरता उसे एक लक्ष्यमें प्रवृत्त नहीं होने देती है। इस अस्थिरताका निराकरण करके उसे

अपने स्थानमें लाना, यह योगसाधनाका एक अंग है। इस योगसाधनाके बिना कोई भी किसी विषयमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। योगशास्त्रानुसार अभ्यास और वैराग्यसे मनकी चंचलता वशमें की जा सकता है।

वृत्तिका संक्षिप्त परिचय

हिन्दीमें 'वृत्ति' शब्दके लिये व्यापार, स्वभाव, व्यवहार, मनकी विशेष अवस्था आदि शब्दोंका प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भमें वृत्तिका तात्पर्य चित्तकी वृत्तिसे है। चित्त जिस-जिस स्थिति या रूपमें रहता है, वे स्थितियाँ चित्तकी वृत्तियाँ हैं। योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिने उनको निम्न पाँच वर्गोंमें वर्गीकृत किया है—

१. प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम (शास्त्रीय)
२. विपर्यय (मिथ्याज्ञान)
३. विकल्प (संशयात्मक ज्ञान)
४. निद्रा (तमका प्रभाव, ज्ञानका अभाव) और
५. स्मृति (अनुभूत विषयका अवशेष)।

इन पाँचोंके द्वारा ही कभी क्लेशकी अनुभूति हो सकती है और कभी क्लेशाभावकी। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. प्रमाण—ज्ञानको प्रमा कहते हैं और ज्ञानके साधनको प्रमाण। योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिके अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम—तीन प्रकारके प्रमाण होते हैं। सांख्यदर्शनमें भी केवल तीन अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण माने गये हैं। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वक्—इन इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह प्रत्यक्ष कहलाता है। प्रत्यक्ष देखने, सुनने, स्पर्श करने, चखने या सूँघनेके ज्ञानके आधारपर बुद्धिके सोचनेसे, जो प्रत्यक्ष नहीं है, ऐसे अप्रत्यक्ष ज्ञेयके ज्ञानकी वृत्तिको अनुमान कहा जाता है, जैसे दूर पर्वतपर धुआँ देखकर न दीखनेवाली अग्निका ज्ञान हो। अनुमान गलत भी हो सकता है, जैसे कुहरेको धुआँ समझकर अग्निका अनुमान कर लेना।

आगमसे तात्पर्य शास्त्रीय प्रमाण है।

२. विपर्यय—मिथ्याज्ञान या भ्रान्त धारणाको विपर्यय कहते हैं (यो०सू० १।८)। जो वस्तु जहाँ नहीं है, उसकी वहाँ प्रतीति विपर्यय है, जैसे रास्तेमें रस्सी देखकर साँपका ज्ञान होना।

३. विकल्प—जिस ज्ञानका आधार सिवाय शब्दोंके और कुछ न हो, उसको विकल्प कहते हैं। जैसे किसीके मुँहसे 'शशश्रृंग' यह शब्द सुन लिया जाय। शशश्रृंगका अर्थ हुआ खरगोशका सींग। खरगोशके सींग नहीं होता, परंतु यदि कोई इन शब्दोंको सुनकर खरगोशके सींगकी सत्ता मान बैठे तो यह विकल्प होगा। इस प्रकार यह विपर्ययके समान ही मिथ्याज्ञान है।

४. निद्रा—जब चित्तमें सत्त्व एवं रजस्का अभिभव होता है एवं तमोगुण प्रधानरूपसे उद्भूत होता है तथा चित्तमें जाग्रत् एवं स्वप्नवृत्तियोंका अभाव हो जाता है, उस वृत्तिका नाम निद्रा है।

५. स्मृति—अनुभूत विषयोंके अनुभवजन्य संस्कारोंका विलोप न होनेका नाम 'स्मृति' है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य मानस-शास्त्रज्ञ जैम्स कहते हैं कि पहले उत्पन्न हुए किसी भी मनोव्यापारका एक बार मनमें लीन हो जानेके बाद जो फिर भान होता है, उसे स्मरण कहते हैं।

जिस स्मृतिका विषय कल्पित या अयथार्थ होता है, उसे 'भावितस्मर्तव्यास्मृति' कहते हैं, जो सदा स्वप्नमें ही होती है और जिस स्मृतिका विषय अकल्पित होता है, उसे 'अभावितस्मर्तव्यास्मृति' कहते हैं, जो जाग्रत्-अवस्थामें होती है।

प्रमाणादि पाँचों वृत्तियाँ सात्त्विक, राजस और तामस होनेसे सुख, दु:ख और मोहरूप हैं और सुख, दु:ख और मोह क्लेशस्वरूप है। इसलिये ये सभी वृत्तियाँ ही निरोध करनेयोग्य हैं। मोह स्वयं अविद्यारूप होनेसे सभी दु:खोंका मूल है। दु:खकी वृत्तियाँ स्वयं दु:खरूप ही हैं। सुखकी वृत्तियाँ सुखके विषयों और उनके साधनोंमें राग उत्पन्न कराती हैं। सुखभोगके बाद जो उसकी वासना रहती है, वह राग है। उन सुखके विषयों और उनके साधनोंमें विघ्न होनेपर द्वेष उत्पन्न होता है। इसलिये क्लेशजनक सुख-दु:ख मोहस्वरूप होनेसे सभी प्रकारकी वृत्तियाँ त्याज्य हैं। सामान्यत: हम इन्हीं वृत्तियोंमें फँसे रहकर 'स्वरूप' को भूले रहते हैं।

अत: मानवको 'वृत्तिसारूप्य' की साधारण स्थितिसे निकलकर 'वृत्तिनिरोध' द्वारा 'स्वरूपावस्थिति' का अनुभव करके जीवनको सफल बनानेका प्रयास करते

रहना चाहिये। यह प्रयास दीर्घकालतक निरन्तर और सत्कारपूर्वक करते रहनेसे 'सिद्धि' की प्राप्ति सम्भव है।

निरोधका संक्षिप्त परिचय

निरोध शब्दसे प्रतिबन्ध (Restraint), रोक (Check), दमन (Suppression), नियन्त्रण (Control) आदिका बोध होता है, परंतु प्रस्तुत प्रसंगमें वृत्तियोंके निरोधका अर्थ इनका नाश या हठात् रोकना नहीं है, प्रत्युत वृत्तियोंके अपने आधारभूत (अधिकरण) चित्तमें लय हो जानेकी विशिष्ट अवस्थाका नाम 'निरोध' है। चित्तकी पाँच भूमियोंमें 'निरोध' अन्तिम भूमि है। चित्तकी वृत्तियोंका निरोध कर देनेसे—इसीको चित्तकी निरुद्ध अवस्था कहते हैं—सारी इन्द्रियाँ निर्व्यापार हो जाती हैं, जिससे बाह्य प्रपंच दीखना बन्द हो जाता है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति नामक पाँचों प्रकारकी वृत्तियोंके निरुद्ध हो जानेपर (असम्प्रज्ञात समाधि सध जानेपर) द्रष्टा अर्थात् पुरुष 'वृत्तिसारूप्य' की साधारण स्थितिसे निकल स्वरूपास्थिति यानी अपने असली स्वरूपमें स्थितिलाभ करता है (पा०यो० समाधि ३)।

'युज्-समाधि' धातुसे बने 'योग' शब्दका अर्थ है—समाधि

योग समाधिको कहा गया है; क्योंकि यह योग शब्द 'युज्-समाधौ' से निष्पन्न होता है, 'युजिर्-योगे' संयोग अर्थवाली युजिर् धातुसे नहीं। योगभाष्यकार महर्षि व्यासने भी योग शब्दका अर्थ समाधि ही किया है। अविद्या आदि चित्तकी वृत्तियोंके पूर्ण निरोधका परिणाम यह होता है कि चित्त बाह्य वृत्तियोंसे असम्बद्ध होकर स्फटिककी भाँति स्वच्छ रूपसे अवभासित होता है और उसके फलस्वरूप द्रष्टा अपने स्वरूपको देखता हुआ उसमें ही अवस्थितिको प्राप्त करता है (योगसूत्र १।३)। यही स्थिति समाधिकी है, इसलिये प्राय: समाधि और योग शब्द पर्यायवाची शब्दके रूपमें भी व्यवहृत होते हैं।

योग अर्थमें समाधि शब्दके प्रयोगका कारण यह भी है कि चित्तवृत्तियोंके निरोध करने अर्थात् योगकी साधनामें प्रवृत्त होनेपर अहिंसा आदि यमों और शौच-सन्तोष आदि नियमोंद्वारा कायिक, वाचिक एवं मानसिक शुद्धि हुआ करती है, तदनन्तर आसन और प्राणायामकी साधनासे शरीर और चित्तकी चंचलता दूर होती है एवं क्रमश: चित्तमें स्थिरताका उदय होता है। इसके अनन्तर क्रमश: देश-विदेशमें चित्तबन्ध (धारणा) और उस देशमें ही चिरकालतक एकता एवं अवस्थिति होती है। यही अवस्थिति दृढ़ होनेपर समाधि कही जाती है (योगसूत्र २।२९)। समाहित-चित्तकी यह अतिशय एकाग्रता (निरोध) ही योगसाधनाका अभीष्ट (लक्ष्य) है।

मोटे रूपमें चित्तकी एकाग्रताकी पूर्णता स्थितिको समाधि कहते हैं। अर्थात् साधक साधना करता हुआ पहले धारणा (Concentration or Fixing of Mind)-की स्थितिको प्राप्त करता है, फिर धारणासे ध्यानमें पहुँचता है और अन्तमें ध्यानसे समाधि (Stage of Pure Consciousness on Absolute Contemplation)-की अवस्थाको प्राप्त करता है। चित्तकी जो अवस्था धारणासे आरम्भ होती है, वह समाधिमें जाकर पूर्णताको प्राप्त करती है। इसी बातको ध्यानमें रखकर योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिने समाधिकी इस प्रकार परिभाषा की है—

'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:।'

(यो०सू० ३।३)

जब ध्यानमें केवल ध्येयमात्रकी ही प्रतीति होती है और चित्तका निज स्वरूप शून्य हो जाता है, तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। यानी ध्यानका अभ्यास करते समय जब चित्त ध्येयाकारके रूपमें परिणत हो जाता हो, उसके अपने स्वरूपका भी अभाव-सा हो जाय और सिवा ध्येयके अन्य किसी वस्तुकी प्रतीति न हो, तब उसी ध्यानकी अवस्थाको समाधि कहा जाता है। समाधिकी अवस्थामें एक विशिष्ट प्रकारके ज्ञानका उदय, मनके सब प्रकारके संकल्पोंका विनाश और सब प्रकारकी चित्तवृत्तियोंका विस्मरण होता है, मन सर्वथा निश्चल हो जाता है। इसमें सारी अभिलाषाओं, वासनाओं एवं उत्कण्ठाओंकी समाप्ति हो जाती है। योगदर्शनमें समाधिको भी सिद्धि कहा गया है (यो०द० साधनपाद ४५) और वही वस्तुत: साधककी सबसे बड़ी सिद्धि है। सम्भवत: इसीलिये योगसाधनाद्वारा समाधिस्थितिको प्राप्त करनेका साधकद्वारा प्रयत्न किया जाता है; क्योंकि योगशास्त्रानुसार समाधिके द्वारा कैवल्य (मोक्ष) सिद्धि सम्भव है। यही योगसाधनाका लक्ष्य है।

कहानी—

जिस देशमें गंगा-जमुना बहती हैं

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

पिछले दिनों दिल्लीके संसद्-भवनके सेण्ट्रल हॉलमें गया। मेरे मित्र श्रीभोला रावत एम० पी० ने कहा कि आइये, आपको एक पुराने मित्रसे मिलवायें। मैंने चारों ओर नजर घुमायी, किंतु जान-पहचानका कोई भी व्यक्ति दिखायी न पड़ा। पासकी बेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी एक बाबाजी बैठे थे। भोला बाबूने हँसते हुए कहा—'पहचाना नहीं? ये हैं श्रीमहेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ सन् १९६२ ई० तक संसद्-सदस्य रह चुके हैं!' फिर तो उस दाढ़ी-मूँछोंवाले हँसते चेहरेमें दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखायी दिये।

सन् १९६२ ई० के पहले ही उनके मनमें वैराग्य जाग गया था। आगेके संसदीय चुनावमें खड़े नहीं हुए। अपना भरा-पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर संन्यास ले लिया। पिछले दस वर्षोंसे भारतके प्राय: सभी तीर्थों और पहाड़ोंकी यात्रा कर चुके हैं। पूछा कि क्या आपको किसी प्रकारकी असुविधाका अनुभव नहीं होता? सीधा-सा उत्तर मिला—'वैसे तो संन्यासीको सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान ही नहीं रखना चाहिये। गंगा-जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेड़ेमें श्रद्धालु माँ-बहनें मिल जाती हैं, इसलिये जानी-अनजानी, किसी भी जगह जाता हूँ तो दो रोटी और रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध-दही और सब्जी भी। हाँ, रेलमें बिना टिकट नहीं चलता। वैसे तीसरे दर्जमें सफर करता हूँ, फिर भी इसके लिये पैसेकी जरूरत तो पड़ती ही है। यदि सरलतासे व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ।'

थोड़ी ही देरमें उन्हें बहुत-से परिचित मित्रोंने घेर लिया। एकने पूछा कि 'महाराज! आप तो बहुत आराम और मौज-शौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नहीं होता?' उत्तर मिला, 'इस नये मोड़से वास्तवमें मुझे सुख और शान्ति मिली है, जिसका शतांश भी इससे पहले जमींदारी और राजनीतिक जीवनमें नहीं मिल पाया।'

दूसरे मित्रने प्रश्न किया, 'क्या आप अपने परिवारमें कभी जाते हैं?' उन्होंने कहा—'हाँ, कभी-कदाच, जैसे दूसरे घरोंमें ठहरता हूँ, उसी तरह एक-दो दिनके लिये वहाँ भी ठहर जाता हूँ।'

महेन्द्र बाबूसे हम हमेशा राजनीतिक बहस और हँसी-दिल्लगी किया करते थे, परंतु मैंने देखा अब उनके प्रति सबके मनमें श्रद्धा है, एक-दोकी आँखें तो गीली हो आयीं।

उसी रात मुझे जयपुर जाना था। ऊपरकी बर्थ मिली थी। सदाकी भाँति भगवे रंगका खादीका कुर्ता पहने था। रक्तचापके उपचारके लिये मेरे मित्र श्रीरामाश्रय दीक्षितद्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमें थी, जो संयोगसे बाहर दिखायी दे रही थी। कण्डक्टर गार्ड टिकट चेक करता हुआ मेरे पास आया। बड़ी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली बर्थकी व्यवस्था मेरे लिये कर दी। मैंने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यों न इस यात्रामें महेन्द्रजीका नुस्खा आजमाया जाय?

जयपुरका काम थोड़ी देरमें निपटाकर ढाई बजे वाली बससे आगराके लिये रवाना हुआ। बस-कण्डक्टरने कहा—'बाबाजी! रास्तेमें मेंहदीपुरके हनुमान्‌जीका मन्दिर पड़ता है। दर्शन जरूर कीजिये, तुरंत परचा देते हैं।'

इस स्थानका नाम बहुत दिनोंसे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शामके पाँच बज गये। मैं उतर पड़ा। मुख्य सड़कसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। ताँगा लेकर वहाँ छ: बजे पहुँचा। हलवाइयों, मोदियोंकी छोटी-छोटी दुकानें, दो-चार धर्मशालाएँ और बेडौल-सा मन्दिर, यह था मेंहदीपुर। भीतर जाकर देखा, ढोलकपर कीर्तन हो रहा है और तीन-चार औरतें उसकी

तालपर सर धुन रही हैं, कभी-कभी चिल्ला उठती हैं। मन्दिरके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि बालाजीके प्रभावसे प्रेतबाधा मिट जाती है। खैर, मैं इस विवादमें पड़ना नहीं चाहता कि वास्तवमें वे प्रेत-पीड़ित थीं या दर्शनार्थियोंको प्रभावित करनेके लिये पुजारियोंद्वारा नियुक्त।

गर्मी, सड़ाँध और दुकानोंकी मक्खियोंसे ऊब उठा और मुख्य सड़कपर आ गया। सात बज रहे थे। घण्टे-भर खड़ा रहा, परंतु आगरा जानेवाली कोई बस नहीं आयी। पता चला, अब कोई बस मिलेगी नहीं। लाचार, सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कुएँकी जगतपर बैठ गया। आठ बज गये, अँधेरा हो आया। सोचने लगा, शायद वापस मेंहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामें ठहरना पड़ेगा। इतनेमें ही दूरसे आती रोशनी दिखायी पड़ी। कुछ देर बाद देखा, एक ट्रक आ रहा है। पास आनेपर हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवरने पूछा, 'कहाँ जाना है बाबाजी?' मैंने कहा—'आगरा।' इससे आगे कुछ और कह पाऊँ कि उसने बड़े रोबसे अपने खलासीको मेरा सामान ट्रकपर चढ़ानेके लिये कहा। जबतक वह नीचे उतरे, आसपास खड़े भक्तोंने मेरा सामान उसे पकड़ा दिया। ड्राइवरने ट्रकके ड्राइवर-केबिनकी छतकी ओर इशारा करते हुए कहा—'आप ऊपर आसन लगा लें, कोई कष्ट न होगा।' उसकी आवाजमें स्नेह, श्रद्धा और विनय पाकर मैं कुछ कह न सका। लोहेकी सीढ़ियोंके सहारे छतपर चढ़ गया। खलासीने अपने सोनेकी जगहके पास ही मेरे सोनेके लिये अपना एक पुराना-सा गद्दा बिछा दिया। मैं उसपर लेट गया।

ट्रक चौड़ी सड़कके दोनों ओरके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी झुकी डालियोंके नीचेसे चला जा रहा था। ऊपर खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नयी उमरका था, फुर्तीला और तेज। अपना सुख-दुःख सुनाने लगा—'पाँच-छः वर्षसे ट्रकोंमें घूमा करता हूँ। घरकी गरीबीने कठोर जीवनके लिये बाध्य किया। माँ, छोटे दो भाइयों और बहनकी देखभाल करती है। बाप शराबी था, पाँच बीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। ट्रक दौसासे सोफ्टस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। ट्रकके ड्राइवरको उस्ताद मानता हूँ। उसीने खलासीमें भरती किया। उसकी जुबान कड़वी है, मगर दिल मीठा। बहुत गालियाँ देता और मारता था, मगर काम सिखाकर छोड़ा। साल-दो साल हुए ड्राइविंगका लाइसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकड़ा देता है, मगर अभी पूरी तौरपर गाड़ी छोड़ता नहीं। तनख्वाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।'

मैं सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आँखें झपती थीं। कब गहरी नींदमें सो गया, पता नहीं। एकाएक ड्राइवरकी आवाज सुनायी पड़ी, 'महाराज! भोजन करेंगे?' घड़ी देखी, रातके ग्यारह बजे थे। जंगलमें रास्तेके किसी ढाबेके सामने ट्रक रुका था। हाथ-मुँह धोकर वहीं रखी मूँजकी खटियापर लेट गया। थोड़ी देर बाद शुद्ध देशी घीमें छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और अच्छा दही थालीमें आया, साथमें अचार, तृप्त होकर खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढाबेवाला संकोच करने लगा।

रात करीब डेढ़-दो बजे ट्रक आगरेकी सीमा-चुंगीपर रुका। सुनायी पड़ा, 'ऊपर कौन है?' आवाज सुनते ही मैं जग पड़ा था। ड्राइवरने बताया, 'एक महात्मा हैं।' ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा 'कहाँ उतरेंगे महाराज?' मैंने कहा, किसी भी धर्मशालाके पास छोड़ दो। उसने अनुरोध किया, 'आज रात क्यों-

न इसी ट्रकपर आराम करें, सुबह जहाँ मर्जी चले जायँ।' मुझे नींद आ रही थी, उसकी बात मान ली और ट्रकपर ही सो रहा।

सुबह पाँच बजे उठा तो देखा कि शहरके बाहर एक पेट्रोल-पम्पपर दूसरे ट्रकोंके साथ हमारा ट्रक भी खड़ा था। ड्राइवर और खलासी मेरे पास ही गहरी नींदमें सोये थे। पासकी झाड़ियोंमें शौचादिसे निवृत्त होकर आया। उस समयतक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके इस पार नौ-निहाईमें रुका था। संयोगसे सुबहकी पालीपर जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको अपना कार्ड देकर कि कानपुरमें अपने ऑफिसमें रखवा देना, मैं वहाँसे मँगवा लूँगा। उसने कहा—'फ्रिक न करें महाराज, आपका बक्स परसों सुबहतक पहुँच जायगा।' रिक्शेमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम पता पूछा, परंतु मनने कहा कि धोखा नहीं होगा।

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहाँ सारा दिन बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुँचा तो पता चला कि कानपुर जानेवाली पैसेन्जर ट्रेनमें फर्स्ट क्लासकी सारी सीटें पहलेसे ही भरी हैं। तीन दिनकी लगातार यात्रासे थका हुआ था। मनमें चिन्ता हुई। देखा, एक कम्पार्टमेंटमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा— 'भाई! एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे?' उन्होंने बच्चोंको एक सीटपर कर दिया और एक पूरी बर्थ मुझे दे दी। मैंने देखा, यहाँ भी मेरे वेशने अपना चमत्कार दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

घर पहुँचा तो दो-तीन घण्टे बाद अरोड़ा ट्रान्सपोर्टका फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी है, ड्राइवर यहीं बैठा है, आपको प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा कि क्या मैं स्वयं ट्रकसे आया था या आपके यहाँ आनेवाले कोई महात्माजी थे? मैंने जब उन्हें बताया कि मेंहदीपुरसे आगरातक मैं ही ट्रकपर आया हूँ, तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

इस यात्रामें एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जनमानसमें गंगाकी पवित्रता और जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमिपर बसे लोग साधु-महात्माओंकी सेवा करते आ रहे हैं। देशका सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ अंशोंमें अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बदरीनाथसे कन्याकुमारी और द्वारिकासे सुदूर कामाख्यातक साधु-संन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

हे मातु गंगे!

हे मातु गंगे! सरित पावनि, गौरि, सुर-सरि, मालिनि।
तुम जह्नुकन्या, भीष्ममाता, विवर-थल-नभ-गामिनी॥
हे सुर-तरंगिनि! शैलनन्दिनि, सर्वकालसुभाषिनी।
भागीरथी, नगपतिपदी, अघपुंज-कल्मषहारिनी॥
हे देवसरि! शुचि जाह्नवी, शिव-जटा-जूट-विहारिनी।
सुरवाहिनी, अविरल प्रवाहित, लोक हित वरदायिनी॥
हे पतितपावनि! मोक्षदायिनि, देवि, पापविनाशिनी।
माँ! सगरपुत्रों की तुम्हीं हो, अवतरित उद्धारिनी॥
हे मातु! तुम देवी दया की, सकल-मंगलकारिनी।
मैं पातकी 'मोहन' शरण, तुम, पाप-पुंज-विदारिनी॥

[प्रेषक—कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल]

प्रेमी भक्त और भगवान्

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रेमी भक्त और भगवान् अभिन्न होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं। इसपर भी भगवान्की एक लीला याद आ गयी।

एक दिन श्यामसुन्दर किशोरीजीके मुखकी ओर देखकर बोले—'प्यारी! तेरा मुख तो मानो चन्द्रमा है और मेरे नेत्र चकोर हैं। ये उसे देखते-देखते कभी तृप्त ही नहीं होते।' तब किशोरीजीने कहा—'प्यारे! तुम चन्द्रमाकी उपमा देकर स्तुतिमें मेरी निन्दा क्यों करते हो? चन्द्रमा तो घटता-बढ़ता है, उसमें तो विष है, वह तो कलंकित है, उसके साथ मेरे मुखकी उपमा कैसे हो सकती है?' श्यामसुन्दर बोले—'प्यारी! मैं तो तुम्हारे मुखकी निन्दा नहीं करता, चन्द्रमाके शीतल प्रकाश और उसकी सुन्दरतासे तुलना करके तुम्हारे मुखकी शोभाका वर्णन करता हूँ।' किशोरीजीने कहा—'ऐसी बात नहीं है। तुम तो स्तुतिमें निन्दा करते हो।'

इतना कहकर किशोरीजी वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। तब श्यामसुन्दर विरहमें व्याकुल होकर किशोरीजीको खोजनेके लिये वन-वन भटकने लगे। इधर किशोरीजी विरह-व्याकुल होकर भगवान्में तन्मय हो गयीं और अपनेको श्यामसुन्दर समझने लगीं। वह भी वनमें किशोरीजीको खोजने लगीं। रास्तेमें दोनोंकी भेंट हुई। वह कहने लगे—'मैं नन्दलाल हूँ।' वह कहने लगीं—'मैं नन्दलाल हूँ इत्यादि।'

प्रेमकी ऐसी महिमा है। उसे न भेद कहा जा सकता है, न अभेद ही कहा जा सकता है। उसमें दूरी भी नहीं है, एकता भी नहीं है। प्रेमका स्वरूप वर्णन करनेमें नहीं आता।

अभेदवादमें तो जीवमें ब्रह्मज्ञानकी जिज्ञासा होती है, ब्रह्ममें नहीं। अतः जैसे समुद्र अपनी महिमामें प्रतिष्ठित रहता है, उसे नदीकी आवश्यकता नहीं होती, नदी ही समुद्रकी ओर चलकर उसमें मिलती है; उसी प्रकार—जिज्ञासु ब्रह्मको प्राप्त होकर उसमें एक हो जाता है, उसमें भिन्नता नहीं रहती। इसी प्रकार योगी भी कैवल्य-अवस्थाको प्राप्त हो जाता है, परंतु प्रेममें तो एक-दूसरेको रस प्रदान करते रहते हैं। अतः प्रेमरस अनन्त है, उसकी कभी पूर्ति नहीं होती।

साधकका प्रयत्न तो चित्तशुद्धितक ही है। उसके बाद साधक जिस भावको लेकर साधन आरम्भ करता है, उसके अनुसार मुक्ति, योग और प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। जो किसी प्रकारके भावको लेकर नहीं चलता, उसको सभी मिल जाते हैं।

प्रेममें देनेका भाव रहता है, लेनेकी इच्छा नहीं रहती। सच्चा सेवक स्वामीसे कुछ चाहता नहीं, उनके सुखमें ही सुखी रहता है। माता पुत्रका लाड़-प्यार करके उसे सुख देनेमें ही प्रसन्न रहती है, मित्र एक-दूसरेको सुख देते हैं। पति-पत्नी आपसमें एक-दूसरेको सुख देते हैं। कोई भी एक-दूसरेसे कुछ लेना नहीं चाहता। इस प्रकार चारों प्रकारके भक्तोंका भाव समझ लेना चाहिये।

रसखान-काव्यमें गो और गोपाल

(श्रीजयदीपसिंहजी, एम०ए० (हिन्दी))

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-काव्यधारामें सैयद इब्राहिम 'रसखान' का नाम अग्रगण्य है। उनका काव्य गुणात्मक होनेके साथ-साथ वैशिष्ट्यपूर्ण है। मुसलमान होते हुए भी उनका भगवान् कृष्णके प्रति प्रेम हृदयके आवेगसे प्रसूत है। इतना ही नहीं, उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र स्वामी श्रीविट्ठलनाथजीका शिष्यत्व भी ग्रहण किया था। उनकी रचनाओंमें भगवान् कृष्णके गोपालस्वरूप और स्वयंके गोप्रेमके अनेक चित्र अंकित हैं। उनके विषयमें यह कहना रंचमात्र अनुचित नहीं होगा कि वे सच्चे अर्थोंमें समन्वयवादी भारतीय संस्कृतिके प्रतिनिधि हैं। जाति, धर्म और सम्प्रदायकी सीमाओंसे परे उनके काव्यमें आये गो और गोपालके कतिपय दृश्योंके यहाँ शब्दचित्र प्रस्तुत हैं, जो वस्तुतः गो और गोपालकी भक्तिसे समन्वित रसखानके हृदयके उद्‌गार हैं—

रसखान अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदि मेरा अगला जन्म मनुष्यके रूपमें हो तो मैं व्रजके गोकुल गाँवमें निवास करूँगा और यदि मुझे पशुयोनि मिली तो उसमें मेरा वश नहीं है, फिर भी मेरा प्रयास रहेगा कि मैं प्रतिदिन नन्दजीकी गायोंके बीच चरनेके लिये जाया करूँ—

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन॥

भगवान् कृष्ण गोपालस्वरूप धारणकर जब गायें चराने जाते हैं तो उस समय उनके हाथमें लकुटी और कन्धेपर कमली होती थी। रसखानके लिये भगवान् कृष्णका यह स्वरूप सबसे आकर्षक था। इसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

या लकुटी अरु कामरियापर, राज तिहूँ पुरकौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधिकौ सुख, नन्दकी गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि, कबों इन आँखिनसों, ब्रजके बनबाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हों कलधौतके धाम, करीलकी कुंजन ऊपर वारौं॥

इतना ही नहीं, वे स्वयं भी गोपीभावसे भावित होकर अपने आराध्यका गोपाल-वेश धारणकर गोचारणके लिये और गायोंके पीछे-पीछे चलनेके लिये वन जाना चाहते हैं। इस सन्दर्भमें उनकी भावनाओंको प्रतिबिम्बित करनेवाला निम्नलिखित सवैया द्रष्टव्य है—

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

एक कवित्तके माध्यमसे रसखान अपनी भावनाओंको व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैं भी ग्वाल-बालों और सुन्दर गायोंके साथ वनमें जाऊँगा और वहाँ तान भरकर गायन करूँगा। वहाँकी गुंजा-मालाओंपर मैं गजमुक्ताकी मालाएँ न्यौछावर करता हूँ। वहाँके कुंजोंकी याद आनेपर मेरे प्राण फड़फड़ाने लगते हैं। रत्नजटित सोनेके महलोंसे भी गोबरसे लिपी-पुती मिट्टीकी कुटिया मुझे प्यारी लगती है। इन बड़े-बड़े महलोंसे भी श्रेष्ठ मुझे व्रजकी गायोंके लिये बने बाड़े लगते हैं—

ग्वालन सँग जैबो वन ऐबौ सुगाइन सँग
हेरि तान गैबौ हा हा नैन फरकत हैं।
ह्याँ के गजमोती माल बारौं गुंजमालन पै
कुंज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ
कहा भयो महल सोने को जटत मरकत हैं।
मन्दिर ते ऊँचे यह मन्दिर हैं द्वारिका के
ब्रज के खिरक मेरे हिए खरकत हैं॥

सायंकाल गोधूलि वेलामें बाँसुरी बजाते मनमोहन गोपाल वनसे वापस लौट रहे हैं, उनके साथ गायें और ग्वाल-बाल हैं। ब्रजबालाएँ दिनभर उनके वियोगसे व्याकुल रहती हैं, अतः उनके दर्शनहेतु वे झरोखोंपर आ जाती हैं। रसखान इस दृश्यका शब्दचित्र एक सवैयेमें

इस प्रकार खींचते हैं—

आवत हैं बन तैं मनमोहन गोहन संग लसै ब्रज ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अमीत इतै करिगौ कछु ख्याला॥
हेरत टेर थकी चहुँ ओर तें झाँकि झरोखनि तैं ब्रजबाला।
देख सु आनन के रसखान तज्यो सब को त्रय ताप कसाला॥

वस्तुतः गोपियों और ब्रजबालाओंके व्याजसे रसखान अपनी ही मनोभावनाओंको व्यक्त करते हैं। कृष्णके दर्शन करनेके लिये उनके प्राण सदा आकुल-व्याकुल रहते हैं। उनके मन-प्राण हमेशा कृष्णके गोपाल-वेशका दृश्य देखते रहते हैं; जिसमें श्रीकृष्णके केश गोरजमें सने हैं, वक्षःस्थलपर वनमाला लहलहा रही है। उनके आगे-आगे गायें और पीछे-पीछे ग्वाल-बाल चल रहे हैं। उनके वंशीवादनकी मधुर ध्वनि चारों ओर फैल रही है। उनकी आँखोंमे बाँकी चितवन और अधरोंपर मन्द-मन्द मुसकान है। उनका श्याम-शरीर श्यामल मेघका आभास दे रहा है, उसपर फहरता पीला पीताम्बर विद्युत्‌की-सी आभा दे रहा है। इस दृश्यको देखकर रसखान कल्पना करते हैं कि यह श्यामघन रसकी वर्षाकर मेरे तनकी तपन बुझायेगा और मेरे प्राणोंको रिझायेगा—

गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल
आगे गैयाँ पाछैं ग्वाल गावें मृदुतान री।
जैसी धुनि मधुर मधुर बाँसुरी की
तैसी बंक चितवनि मंद-मंद मुसकान री॥
कदम विटप के निकट तटनी के तट
अटा चढ़ि देखि पीत पट फहरान री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखान री॥

इस प्रकार रसखानको रसके खान गोपालके गायों और ग्वाल-बालोंके साथ आकर दर्शन देनेकी एक अन्तहीन उत्सुकतामय प्रतीक्षा रही है। उनकी गो और गोपालके प्रति यह प्रेम-श्रद्धामयी भक्ति आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी कि उनके समयमें। उनके एक पदकी निम्न पंक्तियाँ आज भी भक्तोंके लिये कण्ठहार बनी हैं—

एहो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरो
मेरी गैल किनि आइ नेक गाइनि चराउ रे।

'जय गंगे तव वारि'

(श्रीगंगालालजी मेहता)

भव के भय भंजन करे, जननि जाह्नवी माय।
जाको धारे जगतपति, गंगाधर कहलाय॥
उमा उमापति संग है, रमा रमापति लीन।
है गंगा महिमा बड़ी, हरि हर तव आधीन॥
गाम गाम अरु नगर मग, पंथ वारि विश्राम।
थकित पथिक दो क्षण मिले, जपें तिहारो नाम॥
लाभ मिले हानि मिटे, शरण गंग जो जाय।
एक बूँद अमृत पियै, यम की त्रास मिटाय॥
लहरि लहरि शिवशीश पर, अनुपम छटा निहारि।
भव के भय भंजन करे, जय गंगे तव वारि॥
हरि चरणों में हरिपदी, जल मय हर सम रूप।
जलचर नभचर भूमिचर, सब तेरे अनु रूप॥
नहीं पुण्य नहिं कर्म शुभ, नहीं भजा हरिनाम।
हे सुरसरि! तेरी कृपा, पूर्ण करे शुभ काम॥

[प्रेषक—सुश्री चन्द्रिकाजी भट्ट]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

बुरे संकल्पके अनुसार काम मत करो

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि पता नहीं, कितने जन्मोंके कितने अच्छे-बुरे कर्म-संस्कार हमारे मनपर अंकित हैं। हम जब सत्संगमें, शुभ कार्योंमें प्रवृत्त रहते हैं, तब बुरे संस्कार कम जागते हैं। जब असत्-संग और असत् कार्योंमें लगते हैं, तब बुरे संस्कार अधिक जागते हैं। पर जब वे अन्दर हैं तो उनका जागना स्वाभाविक है। साधकका कार्य तो है—बुरे संस्कार जगनेपर उनके अनुसार कार्य न करना, उन्हें कार्यरूपमें परिणत न होने देना। बुरे संस्कार जगनेपर यदि हम उनके साथ न मिलकर उनको कार्यमें परिणत न होने देंगे तो वे क्रमशः मर जायँगे। पाप-संस्कारोंका उदय हो सकता है, मनमें काम, क्रोध, लोभादिकी वृत्ति जग सकती है, पर उसमें आसक्त न होकर उसे वहींका—वहीं मार देना—यही साधकका कर्तव्य है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(५।२३)

'जो साधक इस मनुष्यशरीरके त्यागसे पूर्व ही काम, क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहन करनेमें समर्थ है, वही योगी है और वही सुखी है।'

अभिप्राय यह है कि उनके वेगको बाहर न निकलने दें, अन्दर-ही-अन्दर सहन कर लें—अतएव आपसे यही निवेदन है कि आप सावधानीके साथ मनमें उत्पन्न होनेवाले बुरे संकल्पोंके अनुसार कार्य न करें, उन्हें भीतर-का-भीतर मार दें। यह निश्चित है कि उन्हें कार्यमें परिणत होनेका अवसर नहीं मिलता रहेगा तो वे मर जायँगे। साथ ही अपनेको सदा सत्प्रवृत्तिमें—अपने मन-इन्द्रियोंको यथासाध्य सत्‌में लगाये रखें तो नये संस्कार शुभ होंगे, वे ही जगेंगे, पुराने दब जायँगे और भगवान्‌की कृपासे भगवच्छरणागति या तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो गयी तो सारे कर्म-संस्कार ही दग्ध-विनष्ट हो जायँगे।

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि.......।'

और—

'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते......।'

प्रसिद्ध है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

हृदय बदलनेके लिये क्षमा और प्रेम

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र प्राप्त हो गया था, उत्तर देनेमें देर हो गयी। आपने जो बातें लिखीं, वे सब पहले सुन चुका हूँ। एक तरफकी बात नहीं, दोनों ओरकी बात सुनकर ही मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा था कि मुकदमा उठ जाना चाहिये और आपको उसे क्षमा कर देना चाहिये। मेरा अपना ऐसा अनुभव है और विश्वास तो है ही कि हृदय बदलनेके लिये दण्डकी अपेक्षा क्षमा और प्रेम अधिक सफल होता है और इसीलिये मैंने दूसरे पक्षको भी लिखा था कि वे इस मामलेको निपटा दें, परंतु यदि आपकी इच्छा नहीं है और आप उसीमें उसका और अपना मंगल समझते हैं तो अपनी इच्छाके अनुसार करनेके लिये स्वतन्त्र थे और स्वतन्त्र हैं। मेरा न उसके साथ कोई पक्ष है और न आपके प्रति कोई विरोध। जहाँतक मेरी अपनी समझ है, एक हितैषीके नाते तो आपसे भी यही प्रार्थना करूँगा कि उसके साथ प्रेमका बरताव करके अपनी साधुताकी उच्चता आपको सिद्ध करनी चाहिये। ***'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'*** शेष जैसी आपकी इच्छा हो, आप कर सकते हैं। मेरा जरा भी आग्रह न समझें। शेष भगवत्कृपा।

(३)

अच्छे आदमीके साथ अच्छाई साथ रहेगी

सप्रेम हरिस्मरण। काम-धन्धेके बाबत आपने लिखा, सो बिलकुल ठीक है। काम-धन्धेका ढंग तो इस समय सभी जगह खराब हो रहा है। काम तो भगवान्‌के चलाये ही चलेगा।

तहसीलमें क्या, कैसी चेष्टा करनी चाहिये, इसे मैं नहीं जानता। यह सब सोचना, विचारना, करना, कराना, आपका ही काम है। वहाँके वातावरणसे मैं परिचित हूँ। आजकल किसी स्थानविशेषका ही क्या, सारे भारतवर्षका यही हाल है, परंतु क्या किया जाय? मनुष्य भाँति-भाँतिकी लुभावनी प्रवृत्तियोंमें पड़कर अपनेको गिरा रहा है। उसे परलोक और परमात्माका मानो कोई विचार ही नहीं रहा। जिस ढंगसे मनुष्य आज अन्धा होकर कामोपभोगके पीछे पड़ा है, उसका परिणाम तो दु:ख ही होगा। मेरी तो ऐसी धारणा है कि जगत्‌में अभी दु:ख बहुत बढ़ेगा, फल तो वही होगा, जैसा बीज है। हम बबूलके पेड़से आम नहीं पा सकते।

अच्छे आदमी कहीं भी रहें, उनकी अच्छाई उनके साथ रहेगी और उससे लोगोंको स्वाभाविक सुख मिलेगा। शेष भगवत्कृपा।

(४)

सात्त्विक भावसे भगवत्सेवामें लगा रहना चाहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। इधर बहुत दिनोंसे मैं कोई पत्र नहीं लिख सका। आपका पत्र भी नहीं मिला। भाई! आप जिस क्षेत्रमें पड़े हुए हैं, मुझे तो वह बड़ा भयानक मालूम होता है। यह मेरी कमजोरी ही है। राग-द्वेषसे बचकर, दलबन्दीमें पड़कर, ऐसे क्षेत्रमें रहना सहज काम नहीं है। जो कुछ हो, मेरा बार-बार यही निवेदन है कि मानव-जीवन बहुत थोड़ा है और वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये। इस जीवनका एक-एक क्षण सात्त्विक भावसे भगवत्सेवामें ही लगना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(५)

विपत्तिमें दृढ़तापूर्वक खड़े रहें

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कल यहाँ सकुशल पहुँच गया। आप नहीं आये सो बहुत अच्छा किया। इस समय आपका वहाँ रहना बहुत आवश्यक है। सारे समाचार ज्ञात हुए। घबराइयेगा नहीं। विपत्ति तो सत्यकी कसौटी है। सत्यका सोना विपत्तिकी आगमें तपकर ही और भी उज्ज्वल होता है। गुण्डईकी तो कल्पना ही क्यों होनी चाहिये। कोई आदमी भूल करे तो हम बदलेमें गुण्डे बन जायँ? इसमें हमारा क्या लाभ है? इस जोशको उतार दीजिये। अपने चरित्र और आचरणको अधिक-से-अधिक पवित्र, उज्ज्वल, सर्वहितकारी बनानेकी चेष्टा कीजिये। जिन्होंने आपके साथ बुराई की है, उनका हृदयसे भला चाहिये। वे भूलमें है। उनके प्रति जरा भी द्वेषभाव मत रखिये। न उनका कभी अहित ही सोचिये। आपने ठाकुरसाहबको कुछ भी नहीं लिखनेके लिये लिखा, इसलिये मैं नहीं लिख रहा हूँ। लिखनेका मन तो हुआ था। फिर रुक गया। सब समाचारोंके पत्र मुझको बराबर देते रहें। आपने जब कोई अपराध नहीं किया है तब आपपर कोई बात क्यों होने लगी। जो कुछ हुई है या आगे भी हो सकती है, वह आपकी किसी पूर्वकृत क्रियाका ही फल है। किसीका दोष नहीं है। यह घटना और ये लोग तो उसमें निमितमात्र हैं। आप जरा भी चिन्ता न कीजिये। प्रत्येक परिस्थितिका धैर्य, शान्ति, ईश्वरविश्वास और आत्मिक पवित्रतापर विश्वास रखते और इन्हें सुरक्षित रखते हुए ही सामना कीजिये। अन्तमें सत्यकी विजय होगी।

विपत्तिके सामने दृढ़तापूर्वक खड़े रहनेसे विपत्ति ऊपर-ऊपरसे निकल जाती है। यदि कोई उस समय गिर जाय तो उसको वह धर दबाती है। आँधी आती है फिर निकल जाती है। यही हाल विपत्तिका है। ***'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम'*** मनमें रोष-विषाद न कीजिये। यह जो बदनामी हुई है, किसी भलाईके लिये ही हुई है। बदनामी होनेमें डर नहीं। डर है बदनामीका काम करनेमें। कोई हमें लाख बार बुरा बतलाये और घृणा करे, जरा भी आपत्ति नहीं है—यदि हम वस्तुत: भगवान्‌के सामने बुरे नहीं हैं और यदि हम बुरे हैं तो चाहे सारी दुनियाँ हमारी तारीफ करती हो—हमें महात्मा बतलाती हो। उसका कुछ मूल्य तो है ही नहीं। वह आत्मप्रवंचना है और बड़ा भारी नैतिक पतन है। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११। ३४ बजेतक	शनि	स्वाती दिनमें ८। ५४ बजेतक	२३ अप्रैल	**वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ४। ४४ बजेसे।
द्वितीया ,, १। २५ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ११। २० बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। १२ बजेसे।
तृतीया ,, २। ५७ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, १। २८ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ५७ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ७ बजे, **मूल** दिनमें १। २८ बजेसे।
चतुर्थी ,, ४। १ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ३। १० बजेतक	२६ ,,	**धनुराशि** दिनमें ३। १० बजेसे।
पंचमी ,, ४। ३९ बजेतक	बुध	मूल ,, ४। २६ बजेतक	२७ ,,	**भरणी नक्षत्रका सूर्य** दिनमें १। ५३ बजे, मूल दिनमें ४। २६ बजेतक।
षष्ठी ,, ४। ४५ बजेतक	गुरु	पू० षा० सायं ५। १२ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ४५ बजेसे रात्रिशेष ४। ३३ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ११। १६ बजेसे।
सप्तमी ,, ४। १९ बजेतक	शुक्र	उ० षा० ,, ५। २७ बजेतक	२९ ,,	× × × ×
अष्टमी ,, ३। २४ बजेतक	शनि	श्रवण ,, ५। १३ बजेतक	३० ,,	**कुम्भराशि** रात्रिशेष ४। ५४ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ४। ५४ बजे।
नवमी ,, २। ५ बजेतक	रवि	धनिष्ठा दिनमें ४। ३५ बजेतक	१ मई	**भद्रा** रात्रिमें १। १४ बजेसे।
दशमी ,, १२। २२ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, ३। ३७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। २२ बजेतक, **शुक्रास्त** सायं ६। ५९ बजे।
एकादशी ,, १०। २२ बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, २। २१ बजेतक	३ ,,	**मीनराशि** दिनमें ८। ४० बजेसे, **वरूथिनी एकादशीव्रत** (सबका), **श्रीवल्लभाचार्यजयन्ती।**
द्वादशी ,, ८। ८ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, १२। ५१ बजेतक	४ ,,	**प्रदोषव्रत,** मूल दिनमें १२। ५१ बजेसे।
त्रयोदशी प्रातः ५। ४५ बजेतक चतुर्दशी रा.शे. ३। १८ बजेतक	गुरु	रेवती ,, ११। १४ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** प्रातः ५। ४५ बजेसे दिनमें ४। ३२ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ११। १४ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें ११। १४ बजे।
अमावस्या रात्रिमें १२। ५२ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, ९। ३४ बजेतक	६ ,,	**अमावस्या, मूल** दिनमें ९। ३४ बजेतक।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०। ३१ बजेतक	शनि	भरणी दिनमें ७। ५५ बजेतक	७ मई	**वृषराशि** दिनमें १। ३२ बजेसे।
द्वितीया ,, ८। २० बजेतक	रवि	कृत्तिका प्रातः ६। २४ बजेतक रोहिणी रा.शे. ५। ५ बजेतक	८ ,,	× × × ×
तृतीया सायं ६। २३ बजेतक	सोम	मृगशिरा रात्रिशेष ४। १ बजेतक	९ ,,	मिथुनराशि दिनमें ४। ३३ बजेसे, **श्रीपरशुरामजयन्ती, अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी दिनमें ४। ४५ बजेतक	मंगल	आर्द्रा रात्रिमें ३। १८ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** प्रातः ५। ३४ बजेसे दिनमें ४। ४५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ३। ३१ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, २। ५९ बजेतक	११ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ९। ४ बजेसे, **आदि जगद्गुरुशंकराचार्यजयन्ती, कृत्तिका नक्षत्रका सूर्य** दिनमें ८। ५२ बजे।
षष्ठी ,, २। ४१ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ३। ८ बजेतक	१२ ,,	**श्रीरामानुजाचार्यजयन्ती, मूल** रात्रिमें ३। ८ बजेसे।
सप्तमी ,, २। २१ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ३। ४८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २१ बजेसे रात्रिमें २। २६ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ३। ४८ बजेसे, **श्रीगंगासप्तमी।**
अष्टमी ,, २। ३१ बजेतक	शनि	मघा रात्रिशेष ४। ५६ बजेतक	१४ ,,	**वृषसंक्रान्ति** रात्रि ८। १ बजे, **मूल** रा.शे. ४। ५६ बजेतक, **ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ।**
नवमी ,, ३। १६ बजेतक	रवि	पू० फा० अहोरात्र	१५ ,,	**श्रीसीतानवमी।**
दशमी ,, ४। २४ बजेतक	सोम	पू० फा० प्रातः ६। ३२ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५। १२ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें १। ३ बजेसे।
एकादशी सायं ६। ०० बजेतक	मंगल	उ० फा० दिनमें ८। ३७ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** सायं ६। ० बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत, (सबका)।**
द्वादशी रात्रिमें ७। ५२ बजेतक	बुध	हस्त ,, १०। ५९ बजेतक	१८ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १२। १७ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ९। ५४ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, १। ३५ बजेतक	१९ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ११। ५५ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ४। १२ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ५५ बजेसे, **श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत, सायन मिथुनराशिका** सूर्य रात्रिमें १२। १६ बजे।
पूर्णिमा ,, १। ४५ बजेतक	शनि	विशाखा सायं ६। ४१ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ५० बजेतक, **वृश्चिकराशि** दिन १२। ४ बजेसे, **पूर्णिमा, बुद्धजयन्ती।**

कृपानुभूति

गंगामैया और बजरंगबलीकी कृपा

सनातन हिन्दू समाजमें प्रत्येक कुलकी अपनी परम्पराएँ होती हैं, कुलदेवी और कुलदेवता होते हैं; इन परम्पराओंको मानने और कुलके देवी-देवताओंके पूजनसे कुलके सदस्योंका लौकिक कल्याण होता है, साथ ही इनकी अवहेलना करनेसे विपरीत फलकी प्राप्ति होती है। वर्तमान समयमें पाश्चात्य-प्रभावके कारण ये कुल-परम्पराएँ नष्ट होती जा रही हैं, जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव भी परिवारके सदस्योंपर पड़ता है। यहाँ इसी भावबोधकी एक सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है—

मैं अपने परिवारके गुसाईंघर (गहबर)-में बचपनसे ही तीन तरहका शृंगार देखते आ रहा हूँ। मैंने बाल्यकालमें ही अपनी परम पूज्या पितामहीसे इस सम्बन्धमें पूछा था। उन्होंने बताया कि सिन्दूर और घीके मिलावटसे जो पाँच खड़ी रेखाएँ खींची गयी हैं, वह परमेश्वरी देवीकी सेवा है और इसी मिलावटसे जो दूसरा वृत्ताकार शृंगार किया जाता है, वह मेरी सौतनका शृंगार है, जो कि शादीके बाद एक सालके अन्दर ही द्विरागमनके पूर्व स्वर्गवासी हो गयी थीं और तीसरा शृंगार जो कि सिर्फ गायके घीसे किया जाता है, वह भगवान् नरसिंहकी सेवाका प्रतीक है। मैंने उनसे जानना चाहा था कि उनकी सौतनका शृंगार क्यों किया जाता है तो उन्होंने बताया था कि जो लड़की शादीके बाद द्विरागमनके पूर्व ही बिना पतिसे मिले ही स्वर्गवासी हो जाती है, उसका शृंगार किये जानेकी परम्परा चली आ रही है। इसीलिये अपने घरमें ऐसा किया जा रहा है। मेरा बालमन उस समय उनके इस कथनसे पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया था। मेरी परम पूज्या पितामहीजीका वर्ष १९५७ ई० में स्वर्गवास हो गया। उस समयतक मनोरमा (मेरी पत्नी) भी द्विरागमन हो जानेके कारण ससुरालमें रहने लगी थी। उसी समयसे वह भी इन सभी परम्पराओंको देखती आ रही है और वर्ष १९८६ ई० से तो मेरी पूजनीया माँके स्वर्गवासी होनेके बाद उसे ही सभी फर्ज निभाने पड़ रहे हैं।

सन् २००९ ई० के मई माहमें हमलोगोंने विचार किया कि पूजनीया पितामहीजीको स्वर्गवासी हुए पचास वर्षसे अधिक हो गया और परम पूज्य पिताजी भी लगभग पचासी वर्षोंकी अवस्थामें वर्ष १९७४ ई० में स्वर्ग सिधार गये। मेरी पहली पितामहीजी, जिनका शृंगार अबतक किया जा रहा है, वे तो मेरे पूज्य पिताजीके जन्मके पाँच-सात वर्ष पूर्व ही अर्थात् १८८५ ई० या इसके आस-पास स्वर्गवासी हुई होंगी। जबतक मेरे स्व० पिताजीकी माँ एवं मेरी स्व० पितामहीजी जीवित रहीं, तबतक उनकी सौतका शृंगार किया जाना युक्तियुक्त हो सकता था, परंतु अब तो उनसे आगेकी एक पीढ़ी अर्थात् मेरे पूज्य पिताजी एवं पूजनीया माताजीको भी स्वर्गवासी हुए क्रमशः ३५ एव २३ वर्ष बीत गये। हमलोग भी अब कुछ ही दिनोंके लिये इस धराधामके यात्री रह गये हैं। इसलिये स्वर्गीया दादीजीके लिये जो शृंगार किया जा रहा है, उसे खत्म कर दिया जाना चाहिये। आगेके बाल-बच्चोंके लिये इस बोझको हटा ही दिया जाय तो अच्छा होगा।

शृंगार पक्के मकानमें प्लास्टरको थोड़ा गड्ढा बनाकर किया जाता था। घीमिश्रित होनेके कारण सिन्दूरका शृंगार जम जाया करता था और दिनानुदिन ऊँचा हो रहा था। इसलिये गड्ढेसे बाहर निकलकर ऊँचा हो गया था। मेरी पत्नी मनोरमाने एक दिन बाहर निकले हुए सिन्दूर एवं घीके अंशको लकड़ीसे खोदकर बाहर निकाल दिया।

७ जून सन् २००९ ई० दिन रविवारकी बात है, उस दिन अपने दरवाजेपर निर्मित मन्दिरमें श्रीबजरंगबलीकी

प्रतिमाकी प्राण-प्रतिष्ठाका आयोजन किया गया था। उसके चार-पाँच दिन पूर्वसे ही भयंकर गर्मी एवं धूपका प्रभाव शुरू हो गया था। पूजाके दिन मैं तो पूजापर ही था तथा मेरे सभी लड़के एवं लड़कियाँ भी उपस्थित थीं। जबतक पूजा होती रही, मनोरमा वहीं मन्दिरमें ही दो-ढाई बजे अपराह्नतक बैठी पूजा देखती रही। पूजाका जो भी विधान था, सम्पन्न हुआ और भजन-कीर्तनका भी आयोजन किया गया, जो देर राततक चलता रहा।

दो दिनोंके बाद मनोरमाकी तबीयत खराब हो गयी। उसे भयंकर कमजोरी महसूस होने लगी और गर्मी बरदाश्तके बाहर होने लगी। खाने-पीनेमें कुछ भी रुचिकर नहीं लगता था। हमलोगोंने सोचा गर्मीका असर हो गया है; क्योंकि गर्मी काफी पड़ रही थी और मौसम ठण्डा होनेकी कोई उम्मीद नहीं थी। कई तरहकी एलोपैथिक दवाइयाँ दी गयीं और कच्चे आमको आगमें पकाकर उसका शर्बत भी कई दिनोंतक दिया गया। शरीरपर कच्चे आमको पकाकर उसका भर्ता मला गया, परंतु कोई असर नहीं हुआ। मैंने अपने लड़केको कहा कि डॉक्टरको बुलाकर ग्लूकोज चढ़वा दो, इससे ताकत आ जाना चाहिये। संयोगसे दूर देहातमें रहनेकी स्थितिमें तत्काल डॉक्टर भी उपलब्ध नहीं हो सके।

दस-बारह दिन पूर्व एक रात वह दरवाजेपर सोयी हुई थी और मैं बरामदेपर चौकीपर मच्छरदानी लगाकर सोया था। बरामदेपर करीब दो फीट ऊँचा रेलिंग देकर ग्रिल लगा दिया गया है, जिससे कि कोई वस्तु रखनेपर सुरक्षित रह सके। मैं गहरी निद्रामें सोया था। अचानक किसीके द्वारा मच्छरदानीको खींचा जाना मैंने महसूस किया, जिससे मेरी नींद टूट गयी। मैंने देखा कि मनोरमा मच्छरदानी खींच रही है, जिसे कि ग्रिलकी खाली जगहसे हाथ बढ़ाकर वह खींचनेका प्रयास कर रही थी। मैंने मच्छरदानीसे बाहर निकलकर गेट खोला और पूछा कि क्या बात है?

उसने बताया कि अभी मैं गर्मीके कारण जगी हुई थी कि मेरे सिरहानेमें गंगामैया एवं बजरंगबली आकर खड़े हो गये। बजरंगबलीने कहा कि तुमने अपनी दादीका श्रृंगार क्यों खोदा? उसीसे तुम्हें परेशानी हो रही है। तुम जबतक जिन्दा रहो, श्रृंगार करती रहो, इसीमें तुम्हारी कुशलता है। जब तुम नजदीकसे अपनी मौतको देख लेना, तब तुम अपने बच्चोंको इसकी जवाबदेही सौंप देना। वे लोग जैसा भी होगा, करेंगे। तुम अपने जीवनकालमें अपने कर्तव्यको निभाती रहो। तुम अब ठीक हो जाओगी। अब तुम्हें कोई परेशानी नहीं होगी। गंगामैयाने भी उनके इस आदेशकी सम्पुष्टि कर दी और दोनों मुड़कर मन्दिरकी ओर जाने लगे। उसके बाद उसने मुझे उन दोनों देवोंका दर्शन करानेके लिये अपने बिछावनसे उतरकर रेलिंगके पास आकर मच्छरदानी खींचकर जगाना चाहा, परंतु उसी समय बगलके दरवाजेपर खाँसनेकी आवाज हुई और वे दोनों दृष्टिसे ओझल हो गये।

तत्पश्चात् सुबहसे ही मनोरमाके स्वास्थ्यमें सुधार हो गया और उसने कहा कि अब डॉक्टरको बुलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌ने मुझे ठीक कर दिया है और उसी दिनसे वह बिलकुल स्वस्थ हो गयी। बजरंगबली एवं गंगामैयाकी कृपासे इस तरह मनोरमाने स्वास्थ्यलाभ किया, जिसका सुखद अनुभव यादकर मुझे रोमांच हो जाया करता है और आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं। श्रीबजरंगबली और गंगामैयाकी मेरे परिवारके सदस्योंपर इस तरहकी कृपादृष्टिके लिये मुझे काफी खुशीका अनुभव हो रहा है। इसके साथ ही मेरा श्रीबजरंगबली एवं गंगामैयाको शतशः नमन है कि मैया! जब कभी मेरे परिवारके सदस्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायँ या कदम डगमगा रहे हों तो सद्‌दृष्टि प्रदानकर सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करते रहनेकी कृपा करती रहें।—**रामकुमार मण्डल**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गंगाजीके अपमानसे गोहत्याका पाप

राजस्थानके सवाई माधोपुर जिलेके एक गाँवकी यह सत्य घटना कुछ वर्षों पूर्वकी है। हरिद्वारके एक पण्डाजी सवाई माधोपुर जिलेके गाँवोंमें गंगाजल लेकर जाते और लोगोंको प्रसादरूपमें थोड़ा-थोड़ा बाँटते। लोग उन्हें दक्षिणामें एक-एक, दो-दो रुपये अपने इच्छानुसार दे दिया करते थे, उसीसे उनकी आजीविका चलती थी। एक बार वे कुछ लोगोंको गंगाजल प्रसादमें दे रहे थे, उनमें एक नास्तिक-प्रकृतिका व्यक्ति भी था। पण्डाजीने उसे भी गंगाजल दिया, उसने सकुचाते हुए गंगाजल ले तो लिया, परंतु हाथ मुँहके पास ले जाकर चुपकेसे पीछे पीठकी ओर फेंक दिया। उसके ऐसा करते जब पण्डाजीकी दृष्टि पड़ी तब उनकी आँखोंमें आँसू आ गये और वे तुरंत ही हरिद्वार वापस आ गये। इस घटनासे उन्हें इतना दु:ख हुआ कि वे गंगा-किनारे बैठकर रोने लगे और कहने लगे—'हे गंगामैया! कलियुगमें व्यक्ति तेरा अपमान करने लगे हैं, यह अपमान मुझसे सहन नहीं होता। अत: अब मैं गंगाजलको आजीविकाका साधन नहीं बनाऊँगा, चाहे मुझे भूखा ही क्यों न मरना पड़े। आजीविकाका दूसरा धन्धा भी मुझसे होता नहीं। अब क्या करूँ?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्तित होकर रोते-रोते रातमें घर आकर सो गये। उसी रात स्वप्नमें उन्होंने देखा कि गंगामैया आयीं और बोलीं—'बेटा, रोते क्यों हो? जिसने मेरा अपमान किया है, वही व्यक्ति तेरे चरणोंमें आकर रोयेगा, दो दिन धैर्य रख।' जब पण्डाजीकी निद्रा भंग हुई तो वे प्रसन्न मुद्रामें थे। अब वे बड़ी आतुरतासे अगले दो दिनोंकी प्रतीक्षा करने लगे।

उधर गंगाजलका अपमान करनेवाला वह नास्तिक व्यक्ति शौचके लिये गाँवसे बाहर गया था। एक गाय अपने स्वभाववश वहाँ पहुँच गयी, उस दुष्टने एक छोटा-सा पत्थर उठाया और गायके सिरमें मार दिया, दैववश गाय तुरंत मर गयी। उसने इधर-उधर देखा कि यहाँ कोई देख तो नहीं रहा है। वह तुरंत घर आ गया, किसीने उसे यह कुकृत्य करते देखा तो नहीं, पर जब वह अपनी दूकानपर आकर बैठा तब उसके पास दस-पाँच व्यक्ति और बैठे हुए थे, अचानक उसने देखा कि वही गाय उठकर बाजारमें आ गयी है। अपने पड़ोसीकी गाय होनेके कारण वह तुरंत उसे पहचान गया। वह विचार करने लगा कि अरे, यह गाय कैसे जीवित हो गयी! उसने इस कौतूहलभरी घटनाको पासमें बैठे व्यक्तियोंको सुनाते हुए कहा—'अरे भाइयो! यह देखो, बड़े आश्चर्यकी बात है! यह गाय मर गयी थी, लेकिन फिर जिन्दा होकर कैसे आ गयी?'

यह सुनकर वहाँ बैठे सभी लोग बड़े आश्चर्यचकित हुए। वे सभी लोग बड़े कौतूहलसे पूछने लगे—'यह कैसे हुआ?' तब उसने सुबहकी घटनाका जिक्र किया और घटना सुनाते हुए बीचमें ही एक छोटा-सा पत्थरका टुकड़ा उठाकर उस गायके ऊपर फेंकते हुए कहा—'ऐसे ही मैंने इसे मारा था।' अभी यह वाक्य उसने पूरा ही किया था कि वह गाय सबके सामने देखते-देखते ही बीच बाजारमें मर गयी। तुरंत ही यह चर्चा पूरे गाँवमें बिजलीकी तरह फैल गयी; गाँववालोंने और जातिवालोंने कहा कि गोहत्या भयंकर पाप है। शास्त्रविहित प्रायश्चित्त करो, गंगा-स्नान करो, कुछ ब्राह्मण-भोजन कराओ और भागवत-कथा आदिका अनुष्ठान करो, अन्यथा जातिसे बहिष्कृत रहोगे। वह तुरंत चल दिया और हरिद्वार आया। पण्डाजी तो गंगा मैयाके स्वप्नके अनुसार स्टेशनपर इन्तजार ही कर रहे थे।

वह गो-हत्यारा पण्डाजीका चरण पकड़कर रोने लगा। पण्डाजी भी पहचान गये कि यह वही गंगाजलका अपमान करनेवाला व्यक्ति है। उस व्यक्तिने रोते हुए पूरा विवरण सुना दिया कि मैंने गंगाजलका अपमान किया, जिससे मेरे द्वारा कल गोहत्या हो गयी है, अब प्रायश्चित्तके लिये गंगा-स्नान करने आया हूँ।

पण्डाजीने गंगा-तटपर आकर मन्त्रोंद्वारा गंगाजीका पूजन कराया तथा उसके प्रायश्चित्तके लिये गंगामैयासे

प्रार्थना की। घर आकर उस व्यक्तिने भागवत-कथा, ब्राह्मण-भोजन भी प्रायश्चित्तके लिये किया। इस प्रकार गंगामैयाका अपमान करनेके कारण उसे यह दण्ड प्राप्त हुआ।

शास्त्रोंमें गंगामैयाकी महिमाका अनन्त वर्णन है। इसका जल अत्यन्त निर्मल एवं पापनाशक है। यह साक्षात् ब्रह्मद्रव और भगवान् श्रीहरिका जलमय स्वरूप है, अतः प्राणिमात्रको भूलकर भी गंगामाताका अपमान नहीं करना चाहिये।—**श्रीनारायण शर्मा**

(२)

पिप्पलीके घरेलू नुस्खे

पिप्पलीकी जड़के गुण—पिप्पली भारतवर्षके उष्ण प्रदेशोंमें उत्पन्न होती है। इसकी जड़ बहुत ही लाभकारी है।

अवसाद, अनिद्रा, भूलनेकी बीमारी—जिन व्यक्तियोंको अवसाद, अनिद्रा तथा भूलनेकी बीमारी है, वह व्यक्ति पिप्पलीकी जड़के चूर्णको ६ माहतक दो-दो चम्मच (सुबह एवं शाम) गुड़के साथ प्रयोग करें। एक माहमें ही उपर्युक्त बीमारीमें सकारात्मक परिणाम मिलने लगते हैं। तीन माहमें ७५ प्रतिशत बीमारी कम हो जाती है। ६ माहमें व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। यह प्रयोग परीक्षित है।

श्वास रोगमें एक चम्मच शहदके साथ तीन बार खानेपर लाभ होता है।

दुग्धवृद्धि—पिप्पली, सोंठ और हरड़के चूर्णको समान मात्रामें लेकर एक चम्मच चूर्ण गुड़ मिलाकर उसमें थोड़ा घी मिलाकर दूधके साथ दो बार खिलानेसे माताओंमें दूधकी वृद्धि होती है।

आधा शीशी—पिप्पली और वच चूर्ण समान मात्रामें एक चम्मचकी मात्रामें नियमित रूपसे दो बार दूधके साथ खानेपर आधा शीशी दर्द मिट जाता है।

गर्भधारण एवं मासिक पीड़ा—पिप्पली, सोंठ, मिर्च और नागकेसर समभाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें मिलाकर सुबह-शाम दूधके साथ सेवन करनेसे बाँझपन समाप्त हो जाता है और स्त्री गर्भधारण कर सकती है। यह योग मासिक धर्मके समय होनेवाले दर्दमें भी लाभप्रद है।

नेत्ररोग—पिप्पलीके महीन चूर्णको सलाईसे आँखोंमें लगानेसे नेत्रोंके धुन्ध, रतौंधी एवं जाला आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

खाँसी—पिप्पली, सोंठ और बहेड़ा समभाग लेकर शहदके साथ दिनमें तीन बार खानेपर पुरानी एवं बार-बार होनेवाली खाँसीमें लाभ होता है। हिचकी, संग्रहणी, जीर्ण अतिसार, उदर रोग, पाण्डु रोग, मंदाग्नि, मोटापा आदिमें पिप्पली जड़ बहुत लाभदायक है।

—**श्रीकृष्ण दीक्षित**

मो० नं० : ०८७९१५९५६२३

(३)

निष्काम सत्कर्मसे सद्गतिकी प्राप्ति

गीतामें श्रीभगवान्‌का वचन है कि जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है—'**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।**' अतः मृत्युका निवारण तो नहीं किया जा सकता, परंतु निष्काम सत्कर्मोंसे मृत्युको मंगलमय बनाया जा सकता है और दुर्गतिके स्थानपर सद्गतिकी प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि जन्म और मृत्यु जीवके लिये दुसह पीड़ाके क्षण होते हैं, परंतु जीवनमें किये गये परोपकार आदि सत्कर्म तथा अन्तिम समयमें भगवन्नाम-श्रवणसे प्राणीको इस पीड़ासे मुक्ति मिल जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने अपनी पत्नीके अन्तिम समयमें देखा, जिसका विवरण इस प्रकार है—

मेरी धर्मपत्नी स्व० श्रीमति प्रमिला कुमारी शुक्ला पेटकी बीमारीसे विगत अनेक वर्षोंसे लगातार बीमार चल रही थीं। उनका इलाज भारतवर्षके प्रमुख अस्पतालोंमें हुआ। अन्तिम समयमें उनका इलाज बाह्य रोगीके रूपमें एस०जी०पी०जी०आई० लखनऊमें चल रहा था। ईश्वरकी कृपासे वे जीवनके अन्तिम दिनोंतक अपने नित्य कर्म और पूजा-पाठ आदि बिना किसी सहायताके करती रहीं। उनका सम्पूर्ण जीवन सात्त्विक, अध्यात्मनिष्ठ निष्काम परसेवा और सदाचारसे सम्पन्न रहा।

दिनांक ५ नवम्बर २०१४ ई० को मुझे अपने चचेरे भाई, जो गम्भीर बीमारीसे ग्रसित होनेके कारण डॉ० राममनोहर लोहिया अस्पताल लखनऊमें भर्ती थे, उन्हें

देखनेके लिये जाना पड़ा। धर्मपत्नीकी देखभालका दायित्व मैं अपने पुत्रको सौंपकर उनके पास चला गया। इस मध्य मेरी धर्मपत्नीने दिनांक ६ नवम्बर २०१४ ई० को पूर्णमासीके दिन १०१ कन्याओंको भोजन कराने तथा सुहागिन महिलाओंको सुहागिले खिलाने और हवन करानेकी व्यवस्था अपनी तरफसे पुत्रको आवश्यक धन देकर बीमारीकी हालतमें करायी। दुर्भाग्यवश मेरे चचेरे भाईका देहावसान दिनांक ६ नवम्बर २०१४ ई० को पूर्णमासीके दिन प्रातः ही हो गया। अस्तु, धर्मपत्नीको अपना समस्त भोजन आदिका आयोजन न चाहते हुए भी स्थगित करना पड़ा।

दिनांक ८ नवम्बर २०१४ ई० की रात्रि धर्मपत्नीको बड़ी बेचैनीसे व्यतीत हुई, परंतु दिनांक ९ नवम्बर २०१४ मृत्युके दिन प्रातः-से ही वे स्वस्थ हो गयीं। लगभग ९ बजे प्रातः पड़ोसमें रहनेवाली पूजा नामकी बेटी, जो कि प्रायः उनकी अत्यधिक सेवा करती थी, उसे अपने पास बुलाया एवं घरकी आया विनीताको याद किया। अपनी पालित बेटी श्रीमती अर्चनाको पास बैठाया, जबकि उनकी स्वयंकी दो बेटियाँ घरपर ही थीं। अपने बेटे रानूको पासमें बुलाया, बेटेके पूछनेपर आलू एवं दही इच्छानुसार खाया। इसके बाद 'राम राम' का स्पष्ट रूपसे उच्चारण उनके द्वारा किया गया, सिरमें चोटीमें चिमटी लगवायी। लेट जानेपर गायत्री महामन्त्र, महामृत्युंजय मन्त्र सुनते हुए, तुलसीजी मिश्रित गंगोत्रीका गंगाजल बिना किसी बाधाके आरामसे पीती रहीं। मृत्युसे लगभग १० मिनट पूर्व उन्होंने स्वयंकी अंगुलीमें पहनी हुई सोनेकी अँगूठी, पैरोंकी पायलोंको उतरवाया, रुपयोंसे भरा हुआ पर्स स्वयं अपने हाथसे देते हुए, महामृत्युंजय मन्त्रकी यथार्थताको सिद्ध करते हुए पके हुए खरबूजेके फलकी भाँति सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो गयीं। इस दृश्यको घर एवं पास-पड़ोसमें रहनेवाले अनेक लोगोंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा। इससे आज भी कलियुगमें दान-पुण्य एवं परसेवा आदिकी यथार्थता सिद्ध होती है।

महात्मा तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें सच ही कहा है कि—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं बा। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

धर्मपत्नीकी इस असार-संसारसे विदाई वृद्धावस्थामें अत्यधिक पीड़ादायक होना स्वाभाविक है, परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मृत आत्माने जीवनका लक्ष्य प्राप्त किया है।—**प्रकाश बाबू शुक्ल**

(४)

गोमाताकी आत्मीयता

यह घटना सन् १९२० ई० के आस-पासकी है, उस समय मेरी उम्र यही कोई आठ-दस वर्षकी रही होगी। हमारे घरपर एक गाय थी, जिसका नाम था 'लीली'। लीली डील-डौलमें तो बड़ी थी, पर थी बड़ी सीधी। हम बच्चे निःसंकोच उसके पास चले जाते। वह दोनों समय सात-आठ सेर दूध देती थी। शायद हमारी पुरानी गायकी ही बछिया थी। दादीजी उसका सारा काम सँभालती थीं।

लेकिन कुछ दिनों बाद, जब दादीजी अस्वस्थ रहने लगीं तो गायके कामके लिये नौकर रखनेकी जरूरत हुई। इसलिये गायको बेच देना तय हुआ। दाम तय हुए शायद ६० रुपये, जो उस समयके हिसाबसे अच्छी राशि थी। गाय अच्छे सम्पन्न घरमें जा रही थी।

विदाका समय आया तो दादीजी और हम बच्चे बिसूर-बिसूरकर रोने लगे। मुझे आज भी याद है कि गायके भी टपटप आँसू गिर रहे थे। वह बार-बार हम लोगोंकी ओर देख रही थी, मानो यह कह रही हो कि हम लोग इतने दिनोंतक साथ-साथ रहे; अब मुझे क्यों दूसरेके यहाँ भेज रहे हो? यह देख ग्राहकको वापस भेज दिया गया और उसके लिये एक 'हाली' नौकर रख लिया गया। लीली हमारे घरमें ही बुड्ढी होकर मरी। दाह-क्रिया विधिपूर्वक की गयी। दो-तीन दिन सूतक-सा भी मनाया गया। इस घटनासे यह प्रमाणित होता है कि गाय कोई सामान्य पशु नहीं, बल्कि गोमातामें भी ठीक वही आत्मीयभाव होता है, जो मनुष्योंमें।—**रामेश्वर टांटिया**

मनन करने योग्य

गंगाजल अमृत है

प्राचीनकालकी बात है, भरद्वाज नामसे विख्यात एक बड़े धर्मात्मा मुनि थे। उनकी पत्नीका नाम पैठानसी था। वह पातिव्रत धर्मका पालन करती हुई पतिके साथ गौतमीके तटपर निवास करती थी। एक बार मुनिने अग्नि और सोम देवताओंके लिये तथा इन्द्र और अग्नि देवताओंके लिये पुरोडाश (खीर) बनाया। पुरोडाश जब पक रहा था, तब धुएँसे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों
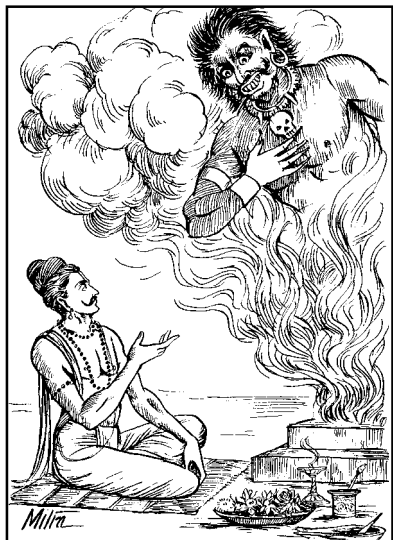
लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उसने पुरोडाश खा लिया। यह देखकर मुनिने क्रोधपूर्वक पूछा—'तू कौन है, जो मेरा यज्ञ नष्ट कर रहा है?' ऋषिकी बात सुनकर राक्षसने उत्तर दिया—'मेरा नाम हव्यघ्न (यज्ञघ्न) है। मैं सन्ध्याका पुत्र हूँ। प्राचीनबर्हिष्का ज्येष्ठ पुत्र मैं ही हूँ। ब्रह्माजीने मुझे वरदान दिया है कि तुम सुखपूर्वक यज्ञोंका भक्षण करो। मेरा छोटा भाई कलि भी बलवान् और अत्यन्त भीषण है। मैं काला, मेरे पिता काले, मेरी माँ काली तथा मेरा छोटा भाई भी काला ही है। मैं कृतान्त बनकर यज्ञका नाश और यूपका छेदन करूँगा।'

भरद्वाजने कहा—तुम मेरे यज्ञकी रक्षा करो; क्योंकि यह प्रिय एवं सनातन धर्म है। मैं जानता हूँ कि तुम यज्ञका नाश करनेवाले हो, तो भी मेरा अनुरोध है कि तुम ब्राह्मणोंसहित मेरे यज्ञकी रक्षा करो।

यज्ञघ्नने कहा—भरद्वाज! तुम संक्षेपसे मेरी बात सुनो। पूर्वकालमें देवताओं और दानवोंके समीप ब्रह्माजीने मुझे शाप दिया। उस समय मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीको प्रार्थना करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा—'जब कोई श्रेष्ठ मुनि तुम्हारे ऊपर अमृतका छींटा दे, तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' ब्रह्मन्! जब आप ऐसा करेंगे, तब आपकी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण होगी। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

भरद्वाजने फिर कहा—महामते! तुम मेरे सखा हो। अतः जिस उपायसे यज्ञकी रक्षा हो, वह बताओ। मैं उसे अवश्य करूँगा। देवताओं और दैत्योंने एकत्रित होकर कभी क्षीरसमुद्रका मन्थन किया था। उस समय बड़े कष्टसे उन्हें अमृत मिला था। वही अमृत मुझे कैसे सुलभ हो सकता है? यदि तुम प्रेमवश प्रसन्न हो तो जो सुलभ वस्तु हो, वही माँगो।

ऋषिकी यह बात सुनकर राक्षसने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'गौतमी गंगाका जल अमृत है। सुवर्ण अमृत कहलाता है। गायका घी भी अमृत है और सोमको भी अमृत ही माना जाता है*। इन सबके द्वारा मेरा अभिषेक करो। अथवा गंगाका जल, घी और सुवर्ण—इन तीनों वस्तुओंसे ही अभिषेक करो। सबसे उत्कृष्ट एवं दिव्य अमृत है—गौतमी गंगाका जल।'

यह सुनकर भरद्वाजमुनिको बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने बड़े आदरके साथ गंगाका अमृतमय जल हाथमें लिया और उससे राक्षसका अभिषेक किया। इससे वह महाबली राक्षस शुक्ल वर्णका होकर प्रकट हुआ। जो पहले काला था, वह क्षणभरमें गोरा हो गया। प्रतापी भरद्वाजने सम्पूर्ण यज्ञ समाप्त करके ऋत्विजोंको विदा किया। इसके बाद राक्षसने पुनः भरद्वाजसे आज्ञा ली और चला गया। [**ब्रह्मपुराण**]

* अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते। अमृतं गोभवं चाज्यममृतं सोम एव च॥ (ब्रह्मपु० १३३। १६)

Dear Contributors,

Kalyana-Kalpataru, the English monthly Magazine published by Gita Press, Gorakhpur has proposed to publish **Sewā-Tyāga Number** as their annual number in **October 2016**.

The tentative list of suggested topics is given below. The contributors are requested to choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us by **30th June, 2016.**

Sewā-Tyāga Number

1. Real meaning of Sewā 2. Sewā—When, Where and How 3. Kinds of Sewā—Of guests, Parents, Guru, Elders, Needy Persons, Society, Country, Cows and Creatures 4. Lifestyle of person dedicated to Sewā 5. Sewā and sympathy 6. Sewā and Gift / Dāna 7. Sewā of needy humans 8. Sewā of cows and all living creatures 9. Sewā and surrender to God 10. Attitude of Sewā in dealing with relatives 11. Sewā—friendly attitude to all 12. Niṣkāma-Sewā—service without expectations 13. Finding opportunities for Sewā 14. Developing Institutions for selfless Sewā 15. Sewā of Saints 16. Social service and Sewā 17. Sewā and God-realization 18. Sewā—cardinal principle of Hinduism 19. Element of Sewā in other religious traditions—(i) Buddhism, (ii) Jainism, (iii) Sikhism, (iv) Christianity, (v) Islam and others 20. Inspiring illustrations of Sewā—(i) In Vedic literature, (ii) Mahābhārata, (iii) Rāmāyaṇa, (iv) Purāṇas and (v) Folklores 21. Real meaning of Tyāga 22. Tyāga of possessions or possessiveness 23. Tyāga with a view to gain social status 24. Surrender of ego—real Tyāga 25. Tyāga of material world for spiritual upliftment 26. Tyāga and God-realization 27. Tyāga of harsh words for happiness around 28. Tyāga of lust and cardinal desires 29. Tyāga of self comfort for helping others 30. Tyāga of hoardings at a time of calamities 31. Tyāga of laziness for good health and prosperity 32. Tyāga without pride 33. Is real Tyāga possible in human life? 34. Illustrious examples of Tyāga—(i) In Vedic literature, (ii) Rāmāyaṇa, (iii) Mahābhārata, (iv) Purāṇas, (v) Indian history, (vi) Traditional folklores, (vii) Western illustrations.

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२- प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये),
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
४- सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया (२५ अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **मतदाता पहचान-पत्र** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४**

प्र० ति० २०-२-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016

चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये ‘श्रीरामचरितमानस’के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (वि०सं०)	६००	82	श्रीरामचरितमानस—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती भी]	१२०
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५००			
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३००	1318	,, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित (मझला भी)	३००
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२४०	83	,, मूलपाठ,ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१२०
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	७०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	१९०	85	,, मूल, गुटका [गुजराती भी]	४५
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१४०	1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	५०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	२५०	1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगोंमें	२५

नित्य पाठके लिये ‘श्रीदुर्गासप्तशती’के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	श्रीदुर्गासप्तशती—मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	४५	118	श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	३०
876	,, मूल, गुटका	१५			
1346	,, सानुवाद, मोटा टाइप	३५	866	,, केवल हिन्दी	२०
1281	,, सानुवाद (राजसंस्करण)	५०	1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५०
489	,, सजिल्द, गुजरातीमें भी	४५	1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	३५

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब छपकर तैयार

शिवोपासनाङ्क (कोड 586)—इस विशेषाङ्कमें भगवान् शिवसे सम्बन्धित तात्त्विक निबन्धोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित शिवके विविध स्वरूप, शिव-उपासनाकी मुख्य विधाएँ, पञ्चमूर्ति, दक्षिणामूर्ति, ज्योतिर्लिङ्ग, नर्मदेश्वर, नटराज, हरिहर आदि विभिन्न स्वरूपोंके विवेचन, आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर शिव-साधनाकी पद्धति, भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अवस्थित शिवमन्दिर तथा शैव तीर्थोंका विस्तृत परिचय और विवरण आदि है। मूल्य ₹१३०

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण (कोड 38)—हरिवंशपुराण वेदार्थ-प्रकाशक महाभारत ग्रन्थका अन्तिम पर्व है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे हरिवंशपुराणके श्रवणकी परम्परा भारतवर्षमें चिरकालसे प्रचलित है। अनन्त भावुक धर्मपरायण लोग इसके श्रवणसे पुत्र-प्राप्तिका लाभ प्राप्त कर चुके हैं। भगवद्भक्ति तथा प्रेरणादायी कथानकोंकी दृष्टिसे भी इसका बड़ा महत्त्व है। मूल्य ₹३५०

पाठकोंसे नम्र निवेदन—वी० पी० पी०से भेजे गये अङ्कोंका भुगतान प्राप्त करनेमें समय लगनेके कारण उनके भुगतानकी प्रतीक्षा किये बिना फरवरी एवं मार्चके अङ्क सभी ग्राहकोंको प्रेषित किये जा रहे हैं, जिससे पाठकोंको मासिक अङ्क समयसे प्राप्त हो जाय।

व्यवस्थापक—‘कल्याण कार्यालय’—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५